आलोचना व निबन्ध

हिन्दी की गद्य शैली
का
विकास

आलोचना व निबन्ध

लेखक

शुकदेव विहारी मिश्र
साहित्य वाचस्पति
(मिश्र बंधु में से एक)

और

हरीकृष्ण बाजपेयी
संसार चक्र, युग की
पगध्वनि आदि के लेखक

प्रथम संस्करण अगस्त १९५० मूल्य १॥)
सजिल्द २)

उमाशंकर दीक्षित

प्रकाशक

राष्ट्रीय पुस्तक भंडार अमीनाबाद,

लखनऊ।

प्रथम संस्करण

अजिल्द मूल्य १॥)

सजिल्द ,, २)

मुद्रक

नवभारत प्रेस, लखनऊ।

प्राक्कथन

पंडित हरी कृष्ण बाजपेयी के साथ मैंने यह ग्रन्थ हिन्दी की गद्य शैली के विकास पर लिखा है। इसमें लेखकों के समयों का विवरण नहीं दिया गया है, वरन् केवल रचनाओं के कथन भाषा शैली प्रदर्शन के विचार से किये गये हैं। यह ऐतिहासिक ग्रन्थ लेखकों के लिये न होकर केवल भाषा के विकास पर है। समय विशेषतया राजा शिवप्रसाद से चलकर वर्तमान काल तक आता है। हमारे सह लेखक एक होनहार नवयुवक हैं और उन्हीं की इच्छा का आदर करके मैंने उनके साथ यह ग्रन्थ लिखना स्वीकार किया है। सम्मतियां जो ग्रन्थ में आई हैं वे दोनों लेखकों की हैं। हमारे हिन्दी साहित्य के इतिहास से भी इन सम्मतियोंका प्राय: मतैक्य है। जिन विविधि ग्रन्थोंके वर्णन इसमें आये हैं वे सब दोनों लेखकों के देखे हुये नहीं हैं। तथापि सम्मतियाँ दोनों के मतानुसार हैं। यह ग्रन्थ साधारण वर्तमान पाठकों के लाभार्थ लिखा गया है।

लखनऊ
२४ अगस्त, १९५०

शुकदेव बिहारी मिश्र
(साहित्य वाचस्पति)

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी गद्य का इतिहास है, जिसमें हिन्दी के जन्मकाल से लेकर भगवती चरण वर्मा तक का वर्णन है। उनकी भाषा, शैली, भाव एवं विचार धारा का अवलोकन है।

पुस्तक पूर्णतयः ऐतिहासिक ढंग लिखी गयी है।

हिन्दी गद्य का काल विभाजन विशेषतयः "हिन्दी साहित्य का इतिहास" (मिश्र बन्धु) पर ही आधारित है।

पुस्तक की प्रतिलिप उतारने में कुमारी रश्मि तथा मंजु ने जितनी सहायता पहुँचायी वह सराहनीय है।—शेष फिर

हरी कृष्ण वाजपेयी

विषय-सूची

उत्पत्ति और विकास

भाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विचारों का विनिमय दूसरे व्यक्ति से करता है। भाषा मनुष्य जीवन के लिये अत्यंत आवश्यक बन गयी है। प्रत्येक राष्ट्र में, देश में कोई न कोई भाषा अवश्य प्रचलित है और उसी भाषा के द्वारा वहाँ के व्यक्ति अपना कार्य सरलता पूर्वक चलाते हैं।

भारत की प्राचीन भाषा प्राकृत थी, जिसको कि भारत की सब प्रचलित भाषाओं की जननी का रूप दिया गया है। हज़ारों वर्ष तक यह देश की भाषा रही और एक से एक बढ़िया ग्रन्थ इसमें लिखे गये। उधर कालिदास के अमूल्य ग्रन्थ, वाल्मीकि की रामायण आदि संस्कृत की अमूल्य निधि हैं।

संस्कृत और प्राकृत के बढ़ने के साथ साथ एक दृढ़ भाषा को जन्म मिला जिसका कि नाम मागधी पड़ा। एक लम्बे समय तक इसका प्रभाव भारत में रहा और प्रांतिक रूप में यह लोक प्रिय भाषा हो गयी। बहुत से बौद्ध ग्रन्थ भी पाली उपनाम मागधी में लिखे गये।

पाली उपनाम मागधी के बढ़ने से और उसमें उच्चकोटि के ग्रन्थों के लिखे जाने के कारण सर्वसाधारण जनता को इस बात की आवश्यकता पड़ी कि कोई ऐसी भाषा अपनायी जाय जिसको सरलतापूर्वक सब लोग समझ सकें। इस दृष्टिकोण को सम्मुख रखते हुये जो भाषा जनता के सामने आयी वह दूसरी प्राकृत कहलायी।

यह भाषा आगे चलकर अपभ्रंश में बदली जिसके साथ साथ कई भारतीय भाषायें उपजीं जिनमें हिन्दी भी थी।

यही हिन्दी अपने को निरंतर बढ़ाती हुई आज वर्तमान स्थिति पर पहुँची है।

हिन्दी मुख्यतः युक्तप्रांत, बिहार, मध्य देश, बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड की भाषा है और साधारणतयः वह मद्रास छोड़कर सारे भारत में समझी जाती है। जैसे ऊपर कहा जा चुका है कि पंडितों का मत है कि दूसरी प्राकृत ही अपना रूप परिवर्तित करती हुयी अपभ्रंश बनकर हिन्दी के रूप में पहुँची, यह सत्य है।

अपभ्रंश प्राकृत का जन्म महर्षि पतंजलि के समय दूसरी शताब्दी ईसा-पूर्व में हुआ। उस कालमें कई एक शब्दों के विभिन्न रूप थे। इस काल की जनता मातृभाषा का ही सुगम रूप चाहती थी। इस कारण जनता ने अपभ्रंश शब्दों को लेकर नई भाषा बना डाली। छठी शताब्दी (विक्रमीय) में यही साहित्यिक भाषा थी। बाणभट्ट सातवीं शताब्दी वाले हर्षवर्धन के राजकवि थे। आठवीं शताब्दी से हिंदी के कवि दिखलाई पड़े। फिर भी वे अपभ्रंश में ही कविता करते थे, कहीं कहीं दो चार हिन्दी के पद आ जाते थे। अस्तु हम यह मानते हैं कि हिन्दी की उत्पत्ति सातवीं शताब्दी से हुई।

हिन्दी गद्य और उसकी उत्पत्ति के विषय में आपस में विद्वानों में मतभेद है।

फिर भी रासो काल (सं० ११०१—१३४७) में तीन गद्य लेख मिले हैं, जिसमें हिन्दी गद्य के प्रादुर्भाव का आभास मिलता है। उन तीन गद्य लेखों में से सं० १३३० के गद्य लेख के कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं।

"पंच परमेस्ठि नमस्कार, जिन शासिन-सार, चतुर्दश-पूर्व-समुद्धार, संपादित सकल-कल्याण संभार, विहित दुरितापहार, क्षुद्र द्रोपत पर्व

वज्र-प्रहार, लीला-दलित-संसार, सु तुम्हि अनुसरहु" (साहित्यिक उदाहरण)

"भलऊ पुलिंग, भलि स्त्रीलिंगु, भलि नपुंसक लिंगु" (व्याकरण संबंधी उदाहरण)

उपरोक्त उदाहरणों में हम देखते हैं कि वहाँ की भाषा अपभ्रंश से स्वच्छंद है। अस्तु हमें इसके द्वारा ज्ञात होता है कि पद्यों में अपभ्रंश का चलन था पर गद्य में उसी काल से शुद्ध हिन्दी का प्रयोग होने लगा था। इस काल में ज्ञानेश्वर द्वारा रची हुयी कुछ गद्य रचना भी मिलती है।

"उत्तर-प्रारंभिक हिन्दी" (सं० १३४८—१४४४) काल में हमें कई गद्य के उदाहरण मिलते हैं और गद्य लेखकों की रचनायें भी। इस काल के गद्य लेखकों में श्री महात्मा गोरखनाथ, श्री ज्योतिरीश्वर, ठाकुर कवि शेखराचार्य के नाम मिलते हैं।

श्री गोरखनाथ के गद्य का एक उदाहरण

"श्री गुरु परमानंद तिनको दंडवत है। है कैसे परमानंद, आनंद-स्वरूप है सरीर जिन्हिको। जिन्हों के नित्य गावै ते सरीर चेतन्न अरु आनंदमय होतु है।" इसके विषय में संदेह भी है कि यह उस काल का न होकर पीछे से उनके कुछ शिष्यों की भाषा है।

श्री शेखराचार्य का गद्य (१३५७)

"काजर क भीति तेलें सींचलि अइसनि रात्रि, पछेवां का वेगें काजर कमोट फूजल अइसन मेघ निविड मांसल अंधकार देषू।"

इस प्रकार दोनों लेखकों के गद्य का रूप हमें उत्तर-प्रारम्भिक हिंदी काल में मिलता है।

इसके पश्चात् "पूर्व-माध्यमिक हिन्दी काल" में (सं० १४४५–१५६०) हमें कई गद्य लेख मिलते हैं जिनमें से कुछ के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

सं० १४५० का उदाहरण:—

"चन्द्र ऊगइ-ऊगइ इसी क्रिया। कउण ऊगइ ? चंद्र जु ऊगइ, सु कर्त्ता, तिहाँ प्रथमा। जे कीजइ, ते कर्म, तिहाँ द्वितीया"

सं० १४५७ के लगभग का उदाहरण

"दृढ़ प्रहार पल्लीपति धाड़ि-सहित एक गामि पड़िओ। एक ब्राह्मणनइँ घरि खीरतुँ भोजन ब्राह्मणी अनइ बालक नाहावतां हूतां लीधउ।"

सं० १४७० के लगभग:—

"महाराजाजी विसक्रमाजी बोलाया।······हुकम थारा। बिसन पुरी, रुद्रपुरी, ब्रह्मपुरी बिचैं अचल पुरी बसावउ। बिसनपुरी का बिसन लोक आया।

सं० १४७८ का उदाहरण:—

"तीह माहि बखाणी इह मरहट्ठ देस। जीणइ देसि ग्राम, अत्यंत अभिराम। भला नगर, जिहाँ न मागीयइ कर। दुर्ग जिस्या हुइ स्वर्ग। धान्य, न नीपजई सामान्य।"

'सं० १५०० का गद्य उदाहरण:—

'राजसिंह कुमार रत्नवती-सहित नाना प्रकार भोग-सुख भोगवइ छइ। घणउ काल हूओ। एक बार पिताइँ मृगांक राजाँइ प्रतीहार हाथि लेख मोकलीनइ कहाविउँ—वच्छ, अमे वृद्ध हूआ। राज्य छांडी, दीक्षा लेवानी उत्कंठा करउं छउँ। घणा काल लगइ ताहरा दर्शतिनी उत्कंठा छइ।

उपरोक्त उदाहरणों में हमें साहित्यिक और साधारण दोनों प्रकार के गद्य मिलते हैं।

सौर काल (सं० १२६१—१६३०) हिन्दी का सबसे प्रसिद्ध युग है। इह काल में हिन्दी का पद्य साहित्य अपने उच्चतम शिखर तक पहुँच गया था। इस काल में तीन गद्य लेखक मिले हैं जिनका कि कथन नीचे के स्थल में किया गया है।

इनमें श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी, श्री स्वामी वल्लभाचार्य जी के शिष्य तथा पुत्र थे। महाप्रभु के पुत्र ने "शृंगार-रस-मंडन" नाम का एक गद्य ग्रन्थ साधारण ब्रजभाषामें लिखा। इनके और इनके पिता श्री महाप्रभु के कारण भाषा की बड़ी उन्नति हुई। इनका जन्म चुनार में सं० १५७२ में हुआ और मृत्यु सं० १६४२ में। आप गद्य के प्राचीन लेखक हैं। आपके रचे हुये ग्रन्थों में से "यमुनाष्टक" तथा "नवरत्न सटीक" का पता चलता है। उनका रचना काल लगभग १५६६ के आँका जाता है। उदाहरण—

"प्रथम की सखी कहत है जो गोपीजन के चरण विषै सेवक की दासी करि जो इनके प्रेमामृत में डूबिके इनके मंद हास्य ने जीते हैं अमृतसमूह तो मरि निकुंज विषै शृंगार-रस श्रेष्ठ रचना कीनी सो पूर्ण होत भई, या कारण ते भाव-बोध में साक्षी दामोदरदास हरसाणी चाचा हरिवंशजी राखी।"

सं० १६२५ की गद्य का उदाहरण—

"मोहिल अजीत नै राँणौ वद्दौ श्योरी राजस्थान लाड़णुँ नै छापर हुतो नै द्रुणपुर मोहित कान्हौ बसतौ।"

गोस्वामी गोकुलनाथ जी द्वारा रचे हुये दो ग्रन्थ "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" और "२५२ वैष्णवों की वार्ता" प्रसिद्ध है। अन्य

यह भी विचार बढ़ा है कि गोकुलनाथ जी ने इन ग्रन्थों का सार मात्र मुख से भाषा और गोस्वामी हरिराय जी ने उन्हें लिपिबद्ध किया।

उदाहरण:—

श्री गोसाईजी के दर्शन करिके अच्युतदास की आँखन में सुँआसुन को प्रवाह चल्यो सो देखिके अच्युतदास को श्री गोसांईजो ने अच्युतदास सौं पूछौ जो अच्युतदास तुमको ऐसा दुख कहा है।"

इस काल में गंग ब्रह्म भट्ट (१६२७) ने "चंद छंद बरनन की महिमा" नाम का गद्य खड़ी बोली में लिखा। उदाहरण:—

"सिद्धि श्री श्री १०८ श्री श्रीपातसाही जी श्री दलपति जी अकबर शाहा जी आम काश में तखत ऊपर बिराजमान रहे।"

उत्तर—तुलसी-काल (१६४६—८०) में हिन्दी गद्य की उन्नति नहीं हुई। वह जैसी अवस्था में था पड़ा रहा। गद्य का लोगों ने अधिक उपयोग भी नहीं किया। साधारण काम काज में इसका प्रयोग होता था।

सं० १६५० के लगभग गद्य का उदाहरण:—

"राव जोधी गयाजी जात पधारिया। आगरारी पारवती नोसरीया, यहाँ राजा करन कनवज रौधणी राठौड़ तिनसूँ जोधौजी मिलिया।"

सं० १६६० का उदाहरण:—

"तीणी वेला दातार जूझार राजा रतन मूँछों करि घालि बोलै, तरुआर तोलै। आगे लंका कुरुखेत महाभारत हुआ, देव दानव लरि मूगवा। च्यारि जग कथा रही, वेद व्यास बाल्मीक कही।"

सं० १६७१ का उदाहरण:—

"जउ अस्त्री पुत्र तणी पूछा काइ। आठ मइ-नव मइ स्थानि एक सो सुक्र होइ तउ प्रताप स्वभाव रमतऊ कहिवउ।

सं० १६८० के लगभग का उदाहरण:—

"जहाँगीर पातिसा, नूर महल इतमाद दौला री बेटी असप खाँ री बहन, तिण सूँ साहजादैं यहाँ यारी हुती, तै पद्दै पातसा हुवौ तरै उणरी माँटी मारिनै उड़ तूँ लै मोहला माँ घाली। पातसाही उण नूं सूँपी।

१६८१ से १७०६ के बीच में जिसे कि हम सेनापति-काल कह सकते हैं उसमें गद्य लेखकों में यशवंत सिंह, हेमराज, कुशल वणिगणि और विष्णुपुरी (१६९०) के नाम हैं। इन्होंने भक्ति रत्नावली नामक पुस्तक का गद्य में अनुवाद किया था।

बिहारी काल (१७०७-२०) में हमें गद्य लेखकों में 'दामोदरदास, मनोहरदास निरंजनी (१७०७, ज्ञान-चूर्ण बचनिका) और खिड़ियो जग्गो के नाम हैं।

दामोदरदास जी का गद्य उदाहरण:—

"अथ बंदन गुरुदेव कूँ नमस्कार। गोविन्द जी कूँ नमस्कार। ......अहो तुम सब साध ऐसी बुधि देहु जा बुधि करि या ग्रंथ की बारतीक भाषा अरथ रचना करिये।"

भूषण काल (१७२१-५०) के गद्य लेखकों में दो के नाम आते हैं। जोधराज गोदीका (१७२०) ने भाव-दीपिका-बचनिका' गद्य में रची। कवि नेवाज ने भी इस काल में कुछ गद्य लिखा।

देव काल (१७५१-७०) में हमें दो गद्य लेखक मिलते हैं,

भगवान मिश्र (१७६०) और सूरति मिश्र (१७६६)। भगवान मैथिल-भाषा में लिखा और सूरति मिश्र व्रजभाषा के टीकाकार हुए।

भगवान मिश्र का गद्य उदाहरण:—

सोमवंशी पांडव अर्जुन के संतान तुरुकान हस्तिनापुर छांड़ि ओर रंगल के राजा भए। तेवंश महँ काकती प्रतापरुद्र राजा भए, जो राजा शिव के अंश नउ लाख धातुक के ठाकुर, जेके राज्य सुबर्न वर्षा भै।"

सूरति मिश्र का उदाहरण:—

'कमलनयन कमल-से हैं नैंन जिनके, कमल बरन् कमल वरण कहिए मेघ को वरण है, श्याम स्वरूप है, कमलनाभि श्रीकृष्ण को नाम ही है, कमल जिनकी नाभि तें उपज्यो है।"

घनआनद से पूर्वालंकृत हिन्दी काल समाप्त होता है और नया युग उत्तरालंकृत समय के नाम से अवतीर्ण होता है। १७६१ से १८८६ तक का है। अब गद्य के लिये हिन्दी में नया द्वार खुलता है। इस काल में हिन्दी गद्य अपनी पुरानी समस्त शृंखलाओं को तोड़ कर नये रूप में आ खड़ा होता है।

वर्त्तमान खड़ी बोली के गद्य का प्रादुर्भाव इसी युग में हुआ। संवत् १८६० में लल्लूलाल ने ब्रजभाषा मिश्रित खड़ी बोली में प्रेमसागर नाम के ग्रन्थ की रचना की। उसी समय हिन्दी के अन्य गद्य लेखक सदल मिश्र ने शुद्ध खड़ी बोली में 'नासकेतोपाख्यान' की अपूर्व रचना की।

दास काल (१७६१-१८१०) के गद्यकारों में ललित किशोरी (१८००), ललित मोहनी (१८००) दौलतराम (१७९५), देवीचंद्र (१७९७) नंदलाल (१८००) आदि हैं। नंदलाल उपन्यासकार थे।

इस काल के देवीचंद्र का उदाहरण:—

"एक नंदक नाम राजा, ताकै चायानक नाम मंत्री। सो राजकाल को अधिकारी। तहाँ एक दिन राजा मंत्री-सहित सीकार गयो।"

"रामचंद्र काल" (१८३१–५५) हिन्दी गद्य के लिये वरदान के रूप में आया और हिन्दी गद्य बदला और उसके साथ बदली उसकी शैलो भी। इस काल की शैली वर्त्तमान गद्य की ओर अग्रसर हुई। इसके पहले हम लोगों ने कई गद्यकार और उनके उदाहरणों को देखा है किन्तु शैली की विशेष उन्नति अभी तक नहीं हुई थी। इस काल में

१. मुंशी सदासुखलाल (१८३७)
२. इंशाअल्ला ख़ाँ (१८५५)
३. धनंतर (१८३५)
४. टेकचंद (१८३७)
५. जीवन विजय (१८३०) के निकट।
६. देवीदास (१८४४)
७. अमरसिंह (१८४५) टीका
८. राधिकानाथ बैनर्जी (१८४७)
९. लक्ष्मीधर श्रोत्रिय (१८५०)
१०. रतनदास (१८५३)

के नाम मिलते हैं। राधिकानाथ के ग्रन्थों के नाम से यह अनुमान लगाया जा रहा है कि वे उपन्यास होंगे पर वे अभी तक अप्राप्य हैं। देवीदास की भाषा से सदा सुखलाल की भाषा गम्भीर और श्रेष्ठ है। उसमें पण्डिताऊपन की झलक है फिर भी आजकल की भाषा से वह बहुत कुछ मिलती जुलती है अर्थात् मिल जाती है। आपका समय

१८०३-८१ तक का था। आपकी भाषा सस्कृत मिश्रित खड़ी बोली है। आपने दो गद्य ग्रन्थ रचे।

उदारण:—

"इससे जाना गया कि सस्कार का भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है जो क्रिया उत्तम हुई, तो सौ वर्ष में चंडाल से ब्राह्मण हुए।"

इंशाअल्ला खाँ की रचना काल का प्रारम्भ १८५५ से ६० के बीच में समझा जाता है। आपका देहावसान १८७५ में हुआ था। उदय भान-चरित्र या रानी केतकी की कहानी हिन्दी में लिखी।

उदाहरण:—

"एक दिन बैठे-बैठे यह बात ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दवी की छुट और किसी बोली की पुट न मिले, तब जाकर मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले"

यही इनकी शैली थी। यह हिन्दी में संस्कृत के शब्द नहीं चाहते थे। इन्हें चाहे आप हिन्दी का लेखक माने या उर्दू का पर आप सरल भाषा के पक्षपाती थे। रामचन्द्र कालमें हिन्दी गद्य एक नईदिशा की ओर मुड़ा। बस यही उस युग कि विशेषता थी।

बेनी प्रवीन काल में (१८५६–७५) रामचन्द्र काल में प्रचारित की हुई गद्य शैली का विकास हुआ और गद्यकारों ने श्रेष्ठ गद्य लिखे जिनमें

१. नवलसिंह (१८७३–१९२६)
२. कृपाराम (१८७४)
३. लल्लूलाल जी (१८६०)
४. सदल मिश्र (१८६६)

प्रसिद्ध हैं।

नवलसिंह का गद्य।

"श्रीमन्नारायन को मेरी नमस्कार है। हैं कैसे नारायन, जिनके सुदर्शन चक्र की नैमिन ते उत्पन्न भयो जो नैमिषारन्य तीर्थ, ताके विषे सौनाकादिक रिषीस्वर भगवत-भक्ति जग्य करके विष्णु भगवान को आराधन चिरकाल तै करत ते तहाँ एक समै मैं सूत पौरानिक के पुत्र उग्रश्रवा को आइबौ भवै।"

कृपाराम उदाहरणः—

"जैसे कोई क्रोध करकै अपने सत्रकूँ पाथा मारै। बहुरि इस सत्र उस पाथर की चोट तें बचि जावै, वह पाथर उलटि कर इस ही के नेत्र लागै।"

लल्लूलाल जी का उदाहरणः—

"शुकदेव जी बोले कि राजा। एक समय पृथ्वी मनुष्य-तन धारण कर अति कठिन तप करने लगी। तहाँ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीनों देवताओं ने आ उससे पूछा कि तू किसलिये इतनी कठिन तपस्या करती है।

आपकी भाषा बड़ी ही मधुर है। आपने अपने गद्य में उर्दू का बहिस्कार करने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया है। प्रेमसागर में व्रजभाषा का विशेष आधिपत्य है। कुछ खड़ी बोली की भी छाप है। उर्दू शैली का चमत्कार मिलने के कारण चमक सी उठी है। रमणीयता, तथा अनप्रासों से ग्रन्थ अच्छा बन गया है। फिर भी भाषा में शिथिलता दृष्टिगोचर हो जाती है।

सदल मिश्र का उदाहरणः—

"चित्र-विचित्र, सुन्दर-सुन्दर, बड़ी-बड़ी, अटारिन से इन्द्रपुरी-समान शोभायमान नगर कलिकत्ता महाप्रतापी वीर नृपति कम्पनी महाराज से सदा फूला-फला रहे कि जहाँ उत्तम उत्तम लोग बसते हैं और देश देश

से एक से एक गुणी जन आय-आय अपने-अपने गुण को सुफल करि बहुत आनंद में मगन होते हैं ”

मिश्र जी की भाषा लचील', गठीली तथा प्रवाह लेते हुये चलती है। आपने ब्रजभाषा की ओर अधिक ध्यान न देकर लेखन-कला को साधारण बोल चाल की ओर लगाया। लल्लूलाल जी की अपेक्षा आपका गद्य विशेष महत्ता-युक्त है। फिर भी इनके समय तक का गद्य रूप कुछ अव्यवस्थिति सा था। शब्दयोजना असंयत थी, भाव प्रकाशन निर्बल।

विलियम केरे ने सं० १८६६ में नये धर्म नियम का अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित कराया, तथा १६७५ में बाइबिल का अनुवाद किया। गद्य शैली की उत्तमता में केरे साहब अपने समय तक अद्वितीय थे।

उदाहरण:—

"तब यीशु योहन से बपतिष्मा लेने को उस पास शालोल से मर्दन के तोर पर आया। परन्तु योहन यह कहके उसे वर्जन करने लगा कि मेमु आपके हाथ से बपतिष्मा लेना अवश्य है और क्या आप मेरे पास आते हैं? यीशु ने उसको उत्तर दिया अब ऐसा होने दे, क्योंकि इसी रीत से सब धर्म को पूरा करना चाहिये ”

जानकी प्रसाद का उदाहरण:—

"सकल कहैं अनेक रंग-मिश्रित हैं। अंसु कहे किरण जाके ऐसे जो सूर्य है, तिन स मान सिदगिरि-श्रृंग ते हंस कहे हंस-समूह उड़ि गयो है।"

यह जानकी प्रसाद के टीका की भाषा है, जो ब्रजभाषा होते हुये भी उच्चकोटि की है।

अस्तु उ रोक्त दो कालो में हम लोग देखते है कि गद्य का प्रसार बढ़ा।

फिर परिवर्त्तन काल के आते ही हिन्दी गद्य भिन्न भिन्न रूपों में बढ़ा चला और देखते देखते बहुत उन्नति कर गया। परिवर्तन काल में (१८६०-१६२५) गणेश प्रसाद, राजा शिव प्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह स्वामी दयानंद, बालकृष्ण भट्ट आदि महानुभावों के प्रयत्न द्वारा गद्य का प्रसार हुआ।

गद्य प्रसार के काल को हम गद्य स्त्रोत काल भी कह सकते हैं।

गद्य स्त्रोत काल

(सं० १८६०-१६१५)

गद्य स्त्रोतकाल में हमें निम्नलिखित गद्यकार दृष्टिगोचर होते हैं।

१. रतनलाल १८६४)
२. ओंकार भट्ट (१८६७)
३. सरदार (१६०२-४०)
४. बदरीलाल शर्मा (१६०४)
५. राजा शिवप्रसाद (१८८०-१६५२)
६. बंसगोपाल (१९००) भाषा सिद्धांत ग्रन्थ (ब्रजभाषा में)
७. जौहरी लाल साह (१६१५)

१८६४ में रतनलाल ने इगलैंड के इतिहास का अनुवाद छपवाया। आपकी भाषा पंडिताऊ है।

"उदाहरण:—

"फिर कुलीनों में उपद्रव मचा और इसलिये प्रजा की सहायता से पिपस-ट्यूटस-नामक पुरुष सबों पर पराक्रमी हुआ।"

ओंकार भट्ट ने भूगोल सागर बनाया। सरदार ब्रजभाषा में गद्य के टीकाकार थे। बंसगोपाल भी प्राचीन प्रथा के गद्य लेखक थे।

बदरीलाल शर्मा ने रसायन प्रकाश लिखा। राजा शिवप्रसाद अब तक के हमारे सर्वोत्कृष्ट गद्य लेखक थे।

दयानंद काल

१९१६-२५

इस काल में भी गद्य की विशेष उन्नत हुई। दयानंद जी ने घर-घर जाकर हिन्दी का प्रचार किया। इस समय गद्य लेखकों में से निम्न प्रसिद्ध हैं।

१—राजा लक्ष्मणसिंह	
२—श्रद्धानंद फुल्लौरी	(१९२०)
३—नवीनचंद राय	(१९२१)
४—व्रजचंदजन	(१९२०-६०)
५—सरूप चंद जैन	(१९२०)
६—बालकृष्ण भट्ट	(१९०१ से प्रायः १९८५)

सरूपचंद जैन ने एक वचनिका व्रजभाषा में लिखी और व्रजचंद जैन ने व्रजभाषा में ही रामलीला कौमुदी। नवीनचंद राय ने शिक्षा विभाग में काम करते हुए पंजाब में हिन्दी का प्रचार किया। भट्टजी का वास्तविक समय दयानंद काल के बहुत पीछे तक है, किंतु इनका रचना काल प्रारम्भ इसी समय से हो गया था। आपने कई वर्ष हिंदी प्रदीप पत्रिका निकाली और तीन नाटक भी रचे।

इस काल में भी पद्य में विशेष परिवर्तन न हुआ और गद्य निरंतर उठता ही गया।

वर्तमान काल

प्राचीन काल में खड़ी बोली को गद्य रूप देने का श्रेय लल्लूलाल तथा सदल मिश्र के समय को हुआ। राजा शिवप्रसाद तथा लक्ष्मणसिंह ने इसमें सहयोग कर उन्नति दी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा प्रतापनारायण मिश्र के समय इसकी विशेष उन्नति हुई और आज सैकड़ों अच्छे गद्य लेखक उपस्थित हैं। पिछले साठ साल से हिन्दी में समाचार पत्र निकलने लगे हैं और इसकी यथेष्ठ उन्नत होती जा रही है। गद्य में विदेशी भाषा के अच्छे ग्रन्थों का अनुवाद भी प्रारम्भ हो गया है। आज की परिस्थिति को देखते हुये हिन्दी के नक्षत्र महान तथा देदीप्यमान हैं।

उपन्यास को चलन भी कुछ दिनों से हिंदी में आ गया है। पिछले उपन्यास लेखकों में देवकीनंदन खत्री, गोपालराम, किशोरीलाल गोस्वामी, आदि प्रधान हैं।

नाटक की ओर दृष्टिपात कर दुख होता है कि इसकी अभी तक विशेष उन्नत नहीं हो पायी है। हरिश्चंद्र, श्रीनिवासदास, तोताराम, गोपालराम, काशीनाथ, आदि ने कुछ प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त राधाकृष्णदास, प्रतापनारायण मिश्र, देवकीनन्दन त्रिपाठी, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, चौधरी बदरीनारायण, राय देवीप्रसाद पूर्ण आदि इस युग के नाटककार हैं। शोक है बहुतों का देहावसान भी हो गया है। प्रसाद हमारे आज के युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं।

समालोचना की चाल भी हिन्दी में थोड़े दिनों से पड़ी है। दास कवि ने प्रथम आलोचना प्रारम्भ की। भारतेन्दु जी भी इस ओर झुके। आपने समालोचना नामका एक पत्र भी निकाला। महावीर प्रसाद

द्विवेदी तथा व्रजनंदन प्रसाद ने भी समालोचना की। मिश्र बन्धुओं (श्याम बिहारी मिश्र एम. ए. और रायबहादुर शुकदेव बिहारी मिश्र बी. ए.) ने हिन्दी नवरत्न (और अब दस) में कवियों की आलोचना की। कवियों की विशिष्ठ आलोचना का सूत्रपात्र इसी ग्रन्थ से प्रारम्भ हुआ। इसके अतिरिक्त पं० पदमसिंह शर्मा, पं० कृष्णबिहारी मिश्र बी. ए. एल. एल. बी, (देवबिहारी) आदि ने भी आलोचना की। रामचंद्र शुक्ल ने समालोचना का सूत्र पात्र नये ढंग से किया।

भारतेन्दु काल (सं० १६२६–३५)

इस काल में बहुत से लेखक और कवि हैं पर कोई आचार्य न हो पाया।

इस काल में भारतेन्दु जी ने राजा लक्ष्मणसिंह की संस्कृत गर्भित और राजा शिवप्रसाद की उर्दू की ओर झुकी हुई भाषा दोनों को मिलाकर चलती फिरती, हँसती-बोलती, गठी हुई, लचीली, चमकदार भाषा की नयी शैली निकाली। इस काल में हास्य रस का अच्छा उत्थान हुआ। इसमें

१. भारतेन्दु जी
२. राधाचरण गोस्वामी (१९१५-८०)
३. रुद्रदत्त शर्मा (१६३५)
४. विद्याप्रकाश (१६२६)
प्रधान थे।

अनुवादकों में

१. बाबू गदाधर सिंह (१९०५–५५)
२. ठाकुर दयाल सिंह (१९३०) मुख्य हैं।

नाटक में भारतेन्दु को लेकर

१. तोताराम (१६०४–५६)

२. श्री निवासदास

३. केशवराव भट्ट (१९१०-६२)

४. राधा चरण गोस्वामी

५. दामोदर शास्त्री (१९३०)

६. देवकीनंदन तेवारी (१९३०) मुख्य हैं।

इसके अतिरिक्त उपन्यास भारतेन्दु के अतिरिक्त दयाराम वैश्य ने लिखा। जीवनचरित्र आदि भी लिखे गये।

प्रताप नारायण मिश्र काल

(१९३६-४५)

इस काल के प्रमुख गद्य लेखकों में निम्नलिखित हैं।

१. प्रताप नारायण मिश्र (१९१३-५१)

२. अम्बिकादत्त व्यास (१११५-५७)

३. बदरीनारायण चौधरी (१९१२-८३)

४. रामकृष्ण वर्मा (१९१६-६३)

५. अमृतलाल चक्रवर्त्ती (१९४५)

६. महावीर प्रसाद द्विवेदी (जन्म १९२१)

उपन्यासकारों में प्रताप नारायण, गोपाल राम, प्रसिद्ध हैं।

द्विवेदी जी का युग और उनके समकालीन लेखकों का परिश्रम हिंदी की विशेष थाती है। आचार्य द्विवेदी जी ने हिन्दी को नया रूप दिया।

पूर्व नूतन परिपाटी में (१९४५-६०)

महता लज्जाराम, अयोध्यासिंह उपाध्याय, किशोरी लाल गोस्वामी, देवकीनंदन खत्री, उदित नारायण लाल, श्याम बिहारी, शुकदेव बिहारी मिश्र, व्रजनन्दन सहाय, रूपनारायण पांडे, श्याम सुन्दर दास, अजमेरी जी, गयाप्रसाद सनेही, बालमुकुंद गुप्त आदि साहित्य सेवी मुख्य हैं।

उत्तर नूतन परिपाटी में (१९६१-९४) हरीकृष्ण जौहर (१९६२) आत्माराम देवकर (१९६१) प्रेमचन्द जी (१९६५) वृंदावनलाल वर्मा

(१९७०) बेचन शर्मा उग्र (१६७५) गल्प लेखकों में प्रसाद, प्रेमचन्द, गुप्त जी, कौशिक जी मुख्य हैं। जैनेंद्रकुमार की कहानियाँ और उपन्यास काफी लोक प्रिय हुए।

निबंधकारों में चंद्रमौलि शुक्ल, रामचद्र शुक्ल तथा गुलाबराय आते हैं।

समालोचकों में रामचंद्र शुक्ल, त्रिपाठी, रामकुमार वर्मा, हजारी प्रसाद तथा अवस्थी आदि मिलते हैं।

आजकल १६७६—

हिन्दी अब इतनी बढ़ गयी है कि लेखकों की संख्या और उनके ग्रन्थों का हिसाब रखना असंभव सा है। फिर भी आजकल हिन्दी में लेखक दिन रात दूने चौगुने वेग से बढ़ रहे हैं। अनुवाद हो रहे हैं, गूढ़ विषयों पर ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं तथा कविता एवं गद्य में नयी दौर शुरू हो रही है।

आजकल के उपन्यासकारों में श्री भगवती चरण वर्मा, यशपाल, इलाचन्द जोशी, उषा देवी मित्रा, रामेश्वर, 'अँचल' आदि मुख्य हैं। निराला जी के भी कुछ उपन्यास उच्चकोटि के हैं। महादेवी वर्मा, चन्द्रावती लखनपाल, आदि के कार्य वर्णनीय हैं। नाटककारों में गोविंद वल्लभ पंत, अम्बिका दत्त त्रिपाठी, प्रसाद आदि हैं। हिन्दी बढ़ती जा रही है। गद्य और पद्य में नित्य नवीन लेखक और कवि उत्पन्न होते जा रहे हैं। समाचार पत्रों की वृद्धि हो रही है आलोचनाओं की धूम है, अनुवाद होते जा रहे हैं यह देख कर हर्ष सा हो उठता है। आगे हिन्दी का क्या रूप होगा, यह ईश्वर जाने फिर भी हम लोगों को निरन्तर आगे बढ़ते रहना है, जिससे हिन्दी की यथेष्ट उन्नति हो सके और उसका साहित्य विशाल और प्रशंसनीय हो।

राजा शिवप्रसाद

जैसा कहा जा चुका है कि सर्वप्रथम हिन्दी खड़ी बोली को गद्य रूप देने का श्रेय साहित्यकार मुंशी सदासुखलाल को है, ठीक है। हिन्दी खड़ी बोली गद्य का यह नवजात स्वरूप अपनी प्रथमावस्था में ही था, अतः इस नवजात शिशु की भाषा में भाव प्रकाशन की क्षमता पूर्ण रूप से न थी।

सदासुखलाल ने कथा और कहानी का रूप लेकर जनता के हृदय में मनोविनोद की भावना भरते हुए गद्य की रचना प्रारम्भ की। इंशाअल्लाखाँ ने चुलबुली भाषा में ऐसी ही कहानी लिखी। इसाई धर्म के प्रचारार्थ पादरियां ने जो अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित करवाये वे शुद्ध खड़ी बोली में थे।

इस काल में हिन्दी गद्य साहित्य में मुंशी सदासुखलाल, लल्लूलाल और सदल मिश्र गद्य का निर्माण कर रहे थे और इसाइयों का दल धर्म प्रचार के हेतु विभिन्न स्थानों में, इसाई विद्यालयों में पाठ्य पुस्तकों की रचना शुद्ध हिन्दी में करा रहा था।

इस प्रकार स्कूलों की भाषा शुद्ध हिन्दी थी फिर भी जो देश में अदालती काम होते थे, उनमें उर्दू का प्रयोग होता था।

अब इस काल में दो प्रश्न उपस्थित थे। हिन्दी खड़ी बोली का मदरसों में प्रयोग। दूसरा उर्दू भाषा का स्कूलों में स्वरूप।

अदालत में उर्दू का प्रयोग होने के कारण जनता ने विवश होकर अपना ध्यान उर्दू पढ़ने की ओर लगाया।

इस हिन्दी उर्दू की विकट समस्या के समय ही राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' का प्रादुर्भाव हुआ। काशी में शिक्षा विभाग के पद पर नियुक्त होकर हिन्दी के महान् पक्षपाती राजा जी ने देखा कि शिक्षा और दैनिक भाषा सम्बन्धी कार्यों में विपक्षी

दल शक्तिशाली है तो आपने इस बात पर ध्यान दिया कि किस प्रकार से इस हिन्दी उर्दू विवाद को समाप्त कर दिया जाय। इसलिये आपने मध्य मार्ग का अनुसरण किया।

आप उर्दू और संस्कृत शब्द मिश्रित हिन्दी का प्रतिपादन करनेवाले व्यक्ति थे। इसी भाषा में आपने अकनोनेक पुस्तकें लिखी और इन्हीं के कारण हिन्दी शिक्षा विभाग में स्थापित हुई। शिवप्रसाद जी के समय में ही बहुत से विरोधियों ने शिक्षा-विभाग में हिन्दी को उठाकर उर्दू को रखने का प्रश्न उठाया था। पर राजा साहब ने दोनों भाषाओं के शब्दों को लेकर इस विवाद को समाप्त कर दिया। आपके भरसक प्रयत्न से हिन्दी की अच्छी उन्नति हुई और लेखन कला में स्थिरता का भाव आने लगा। यदि आपकी भाषा में उर्दू शब्दों का बाहुल्य न होता तो आपका नाम हिन्दी संसार में बहुत ऊँचा होता। आपकी भाषा वर्तमान की ओर विशेष झुकती हुई देख पड़ती है। साधारण बोलचाल की भाषा को भी आपने महत्व दिया है। फिर भी आपकी भाषा में संस्कृत और फ़ारसी दोनों के कठिन शब्द मिलते हैं। उर्दू शब्दों का भी आपने अधिकता से प्रयोग किया है। राजा साहब के १९१७ से पीछेवाले लेखों में उर्दूपन की भरमार है। यह बात इन्हें बाध्य होकर करनी पड़ी या स्वयं आपने इसको चुना, यह नहीं कहा जा सकता। आपकी भाषा खिचड़ी भाषा के नाम से पुकारी जाती है।

उदाहरण:—

"हम लोगों को जहाँ तक बन पड़े, चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिए कि जो आम फ़हम और ख़ास पसंद हो अर्थात् जिनको ज्यादा आदमी समझ सकते हैं, और जो यहाँ के पढ़े लिखे, आलिम, फ़ाजिल पंडित, विद्वान की बोलचाल में छोड़े नहीं गये हैं और जहाँ तक बन पड़े हम लोगों को हर्गिज ग़ैर मुल्क के शब्द काम में लाने न चाहिए,

और न संस्कृत की टकसाल क़ायम करके नए-नए ऊपर शब्दो के सिक्के जारी करने चाहिए।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि आपकी भाषा में हिन्दी संस्कृत और फ़ारसी उर्दू के शब्द किस बहुलता से पाये जाते हैं।

"मुसलमान घमंड के मारें अपनी रअय्यत की जबान में बातचीत करना बेशक शर्मिन्दगी और बेइज्जती का कारण समझते होंगे, लेकिन उनके महल हिन्दुओं की लड़कियों से भरे थे।"

आपने ऐसी भाषा को क्यों चुना ? यह प्रश्न आता है। जिस समय में राजा जी हिन्दी का समर्थन करने के लिए खड़े हुए थे उस समय उसका बड़ा भारी विरोध था। उसके विरोधी उसको हटा कर उसके स्थान पर उर्दू को ला बिठाना चाहते थे। ऐसी परिस्थिति में राजा शिवप्रसाद जी ने सोचा होगा कि हिन्दी का कल्याण तभी हो सकता है जब इसे सरल बनाया जाय। अस्तु आपने हिन्दी को सरल बनाने के लिये और विपक्षियों का विरोध मिटाने के लिये फ़ारसी और उर्दू के शब्दों का व्यवहार प्रारम्भ कर दिया। "आम फ़हम" "ख़ास पसंद" "हर्गिज़" "सल्तनत के मानिंद" "इंतिज़ाम मुंतजिम" आदि शब्दों का बिना किसी हिचक के प्रयोग किया है।

हिन्दी, फ़ारसी, उर्दू के शब्दों को लेकर आपने जो शैली अपनायी वह सफल न हो सकी, कहीं कहीं पढ़ते पढ़ते रुकावट सी पड़ जाती है। संस्कृत और उसके पीछे फ़ारसी के कठिन शब्द को देखकर प्रवाह रुक सा जाता है।

इस प्रकार राजा शिवप्रसाद जी ने हिन्दी में मध्य नीति का अनुसरण किया। यह करने से हिन्दी का विरोध मिटने लगा और उसका प्रचार बढ़ने लगा। पर यह अपने वास्तविक रूप तक न आ सका। उर्दू और हिंदी की विभिन्नता एकता के सूत्र में बाँधी न जा सकी।

वैसे यद्यपि यह ऐक्य राजनीत और राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण से पूज्य था, फिर भी एक सूत्र में न बंध सका। क्योंकि यह खुला प्रश्न था कि कोई भाषा भी अपनी अवनति नहीं चाहती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिवप्रसाद जी का मत था कि उर्दू हिन्दी मिली हुई खड़ी बोली की भाषा हो और देवनागरी लिपि हो।

वर्तमान काल में भी हिन्दुस्तानी भाषा का चलन देश हित और ऐक्य के विचार से लोग उसको बढ़ाना चाहते हैं, किन्तु मेल की कमी और ढीली ढाली भाषा से ग्रन्थों का रूप बिगड़ जाने के कारण साहित्यिक लोग इसको उपेक्षा की दृष्टि से देख रहे हैं। और इसका उचित मान नहीं हो रहा है। इसके अतिरिक्त हिन्दू मुसलमान एकता न होने के कारण यह प्रयास असफल सा होता जा रहा है।

अपने समकालीन लेखकों से राजा साहब की भाषा बहुत श्रेष्ठतर थी। आपके प्रयास से हिन्दी गद्य क्षेत्र की विशेष उन्नत हुई। आप और आपके समकालीन लेखकों की भाषा शैली आदि में विभिन्नता तो अवश्य है फिर भी राजा साहब ने जो कार्य हिन्दी के लिये किया वह चिरस्मरणीय रहेगा।

इस काल के अन्य लेखकों में राम गुलाम द्विवेदी (१६०१) मुख्य थे। सरदार ने पांडित्य पूर्ण टीकायें भी की। रामगुलाम द्विवेदी जी ने गोस्वामी जी पर समालोचना-गर्भित प्रचुर परिश्रम किया। अस्तु इस काल में जिसे हम गद्य स्त्रोत काल कह सकते हैं, हिन्दी गद्य की विशेष उन्नति हुई।

राजा लक्ष्मण सिंह

राजा लक्ष्मण सिंह (सं० १८८३-१९५३) जी ने शिवप्रसाद की भाषा, शैली और भाव प्रकाशन की विचारधारा की ओर किंचित मात्र भी ध्यान न दिया और उसके विपरीत उन्होंने अपनी शुद्ध संस्कृति गर्भित भाषा को चलाया। आप अच्छे गद्यकार थे और राजा

शिवप्रसाद जी की शैली के महान विरोधी। आपकी दृष्टि में हिन्दी, उर्दू की एकता असम्भव थी और आप केवल शुद्ध और साहित्यिक भाषा चाहते थे। आपने १९१८ में आगरे से "प्रजा हितैषी" नाम का पत्र निकाला जिसके अन्दर आपकी भाषा संबंधी विचार धारा का वृहत रूप में उल्लेख रहा करता था। यह पत्र उन दिनों खूब चला। १९१९ में आपने कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुंतल' का हिन्दी गद्य में अनुवाद किया। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त परिश्रम करके आपने रघुवंश और मेघदूत का भी अनुवाद किया।

आप शुद्ध हिंदी के पक्षपाती थे। आपका विचार था कि साहित्य की उन्नति केवल एक और सुदृढ़ भाषा से ही हो सकती है, खिचड़ी भाषा से नहीं। आपकी भाषा शुद्ध और हृदय ग्राहणी होती है। आपने अपने ग्रन्थों में भरसक शुद्ध हिन्दी शब्दों को लाने का प्रयत्न किया और अरबी फ़ारसी के शब्दों को तिलांजलि दी।

उदाहरण:—

"महात्मा, तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जीव यह पूछने को चाहता है कि तुम किस राजवंश के भूषण हो, और किस देश की प्रजा को विरह में व्याकुल छोड़ यहाँ पधारे हो? क्या कारण है, जिससे तुमने अपने कोमल गात को इस कठिन तपोवन में आकर पीड़ित किया है!"

इस प्रकार राजा लक्ष्मणसिंह ने प्रकट रूप से सिद्ध कर दिया कि हिंन्दी में फ़ारसी, अरबी अथवा अन्य विदेशी भाषाओं के शब्द योजना आदि न मिले तो भी वह सुन्दर, प्रवाह पूर्ण हृदयग्राही बन सकती है। आपकी हिंदी में कुछ आगरापन की भी झलक पायी जाती है। राजा शिवप्रसाद के उर्दू शब्द की अधिकता के साथ चलनेवाली शैली को आपने सुधारा। स्वामी दयानंद जी ने भी इस विचार को क्रियात्मक रूप में सराहा।

सितारे-हिन्द की दोनों ओर झुकनेवाली नीति आपको पसंद न आई और आपने दो रुखी नीति को तोड़ कर हिन्दी गद्य को नयी दिशा की ओर मोड़ा एवं उर्दू और फ़ारसी के शब्दों का बहिष्कार किया। इसी समय दयानन्द जी ने भी धार्मिक आन्दोलन में उर्दू भाषा का बहिष्कार किया और शुद्ध हिन्दी के प्रयोग करने के लिये लोगों से प्रार्थना की।

आंग्ल भाषा भारत में पूर्ण रूप से बैठ चुकी थी और वह माध्यम के रूप में स्वीकृत भी हो चुकी थी। 'आंग्ल भाषा का प्रभाव भी हिन्दी पर विशेष रूप से पड़ा और उसको व्यक्त करने के लिये अच्छी हिन्दी की आवश्यकता पड़ी।

अभी तक जो कुछ भी हिन्दी में लिखा गया था उसका कोई विशेष उद्देश्य या ध्येय न था। हिन्दी गद्य की कोई सुव्यवस्थित शैली नहीं थी, भाषा में भाव प्रकाशन की विशेष क्षमता न थी। भाषा में स्थान स्थान पर शिथिलता दृष्टिगोचर होती थीं। प्रत्येक गद्य लेखक की अपनी निजी शैली थी। और भाषा में भिन्न भिन्न मत और विचारधारायें प्रचलित थीं। एक मत सितारे हिंद की मध्य नीति का अनुसरण और प्रतिपादन करता था और दूसरा राजा लक्ष्मणसिंह जी का जो केवल हिन्दी स्वरूप के पक्षपाती थे। दोनों व्यक्तियों ने अपनी अपनी योग्यता और बुद्धि के अनुसार कार्य किया। सितारे हिंद ने परस्थित के वश आकर वही किया जो उन्हें करना था। इतना तो निसंदेह मानना पड़ेगा कि हिंदी की रक्षा सितारे हिंद ने ही की। यदि वह ऐसा न करते तो सम्भवतः हिन्दी की जितनी उन्नत हुई उतनी भी न हो पाती।" उनकी हिन्दी सेवा सराहनीय है।

इसके विपरीत राजा लक्ष्मणसिंह जी ने जो कार्य अपने क्षेत्र में किया वह प्रशंसनीय है और उसकी इस समय अत्यन्त आवश्यकता भी थी, अन्यथा उस काल का हिन्दी स्वरूप परिवर्तित हो जाता। उन्होंने

फ़ारसी, उर्दू शब्दों को हटाकर यह सिद्ध कर दिया कि केवल हिन्दी के शब्दों को लेकर ही गद्य रचना सर्व श्रेष्ठ हो सकती है।

लक्ष्मणसिंह जी ने जनता की अभिरुचि को पहचाना और अपनी विचारधारा का प्रतिपादन करते हुए हिन्दी भाषा को वह रूप दिया जिसकी कि उस युग में माँग थी। उर्दू शब्दों को जड़मूल से उखाड़ने का निश्चय कर उन्होंने हिन्दी शब्द कोष को बढ़ाया और भाषा का विस्तार प्रारम्भ किया।

देश की परिस्थिति बदल रही थी। समाज और उनके दुर्गुणों के दूर करने के उपाय सोचे जा रहे थे। देश के सामाजिक और राजनैतिक सुधार पर विचार हो रहे थे। राजा राम मोहन राय और श्री स्वामी दयानन्द ने इस ओर अपना सक्रिय पग बढ़ाया और अपनी विशाल प्रतिभा द्वारा सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों में आप भाग लेने लगे। धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलन चल पड़ा। आन्दोलन में इस बात की आवश्यकता थी कि एक सुन्दर लोकप्रिय भाषा हो जो हिन्दू समाज में भली भाँति बोली, लिखी और समझी जाती हो। इस बात को ध्यान में रखते हुए राजा लक्ष्मण सिंह जी ने अपने परिश्रम और अध्यव्यवसाय द्वारा हिन्दी भाषा को विस्तृत करने का प्रयत्न किया, जिसके कारण हिन्दी नित्य प्रति बढ़ती गई। राजाजी ने उसे नवीन मार्ग चलाया।

इस प्रकार राजा लक्ष्मण सिंह और शिवप्रसाद जी हम लोगों के सम्मुख आते हैं। दोनों की शैली, भाषा, विचारधारा, भाव प्रकाशन सब भिन्न भिन्न हैं। एक उर्दू और फ़ारसी मिश्रित हिन्दी का पक्षपाती है, दूसरा शुद्ध हिंदी का। एक दूसरी ओर हिन्दी को ले जाना चाहता है तो दूसरा दूसरी ओर।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा लक्ष्मणसिंह जी ने हिन्दी को एक नया रूप दिया। हिन्दी को उन्नतिशील और प्रभावशाली बनाने

का बहुत कुछ श्रेय आपको है। फिर भी इतना तो निस्संदेह कहा जा सकता है कि लक्ष्मणसिंह जी ने हिंदी में नवीनधारा बहाई।

यह युग हिन्दी गद्य साहित्य का अत्यन्त प्रभावशाली एवं विचारणीय युग था। यदि राजा लक्ष्मणसिंह जी थोड़ी सी भी असावधानी करते अर्थात् उर्दू, फ़ारसी आदि को लेकर चलते तो अनर्थ की आशंका आ उपस्थित होती। और हिन्दी गद्य की भाषा उस काल में केवल खिचिड़ी भाषा बनकर रह जाती। आपने हिन्दी गद्य को नया रूप, नयी शैली और नयी भाव प्रकाशन की क्षमता देकर उसको नई दिशा की ओर मोड़ दिया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज

राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह के समकालीन ही स्वामी दयानन्द सरस्वती हिन्दी के प्रचार के लिये नगर नगर घूमते फिर रहे थे। स्वामी दयानन्द जी के विचार राजा लक्ष्मणसिंह के विचारों से मिलते जुलते थे। स्वामी जी अपने समस्त जीवनकाल में धर्म और हिन्दी के हेतु नाना प्रकार के प्रयत्न करते रहे। आप जीवन भर अखंड ब्रह्मचारी रहे। पूर्णानन्द सरस्वती से सन्यास लेकर स्वामी जी ने अपना नाम दयानन्द सरस्वती रक्खा। कृष्ण स्वामी से आपने व्याकरण सीखा। उसके पश्चात् आप ने भ्रमण करना प्रारम्भ किया और जहाँ भी आपको कोई विद्वान मिला, उससे विद्या ग्रहण की।

१९३२ में स्वामी जी ने बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की और यहीं से आपका धर्म और हिन्दी पचार आरम्भ हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्य समाज की स्थापना होने से हिंदी की उन्नति हानी प्रारम्भ हो गई। स्वामी जी और उनके शिष्यों ने भारत के नगर, नगर में जाकर आर्य समाज और हिंदी का प्रचार किया।

स्वामी दयानन्द जी ने अपने काल में सोलह ग्रंथ लिखे जिनमें:—

(१) सत्यार्थ-प्रकाश

(२) ऋग्वेदादि

(३) भाष्य-भूमिका

(४) ऋगवेद-भाष्य

(५) यजुर्वेद-भाष्य

बहुत प्रसिद्ध हैं।

आपने अपने समस्त ग्रन्थों में (१६) वर्तमान युग में चलती हुई शुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया। स्वामीजी संस्कृत एवं गुजराती के महान विद्वान होते हुए भी इस बात के प्रयत्न में सदा रहे कि हिन्दी की विशेष उन्नति हो।

संस्कृत का ज्ञान स्वामी जी को अत्यधिक था, इस कारण हिन्दी में आपने जो कुछ लिखा वह शुद्ध था।

आपके ही प्रयत्न से दिनोदिन आर्य समाज शक्ति शाली होता गया और इस समय भी पंजाब, युक्तप्रांत, राजपूताना, मध्यदेश आदि प्रांतों में लाखों मनुष्य आर्य समाजी हैं। और आज के युग में आर्य समाज द्वारा स्थापित गुरुकुल-विश्वविद्यालय बहुत से कालेज, स्कूल, पाठशाला दिखलाई पड़ते हैं।

आर्य समाज के स्थापित होने से सनातनियों ने विरोध किया और वाद विवाद का बोलबाला हुआ। हम देखते हैं कि इसी के कारण हिन्दी में वक्तृता देने की शक्ति बढ़ी।

अस्तु आर्य समाज ने भी हिन्दी को बढ़ाने में सक्रिय भाग लिया इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। स्वामी जी द्वारा स्थापित किया हुआ आर्यसमाज हिन्दी के लिये वरदान बन कर आया। आर्यसमाज और उसके अनुयाइयों ने धर्म के साथ साथ हिन्दी का भी अत्यधिक प्रचार

किया और इसी कारण हम देखते हैं कि हिन्दी और हिन्दी के पढ़ने वालों की संख्या बढ़ी।

स्वामी जी स्वयं एक बड़े लेखक थे, जैसा कि उनके लिखे हुये सोलह ग्रंथों से व्यक्त होता है। आप लेखक होने के साथ साथ कुशल वक्ता भी थे। उन्होंने लिख कर बोल कर हिन्दी का प्रचार किया। आपकी भाषा शुद्ध थी, संस्कृत मिश्रित थी और उसमें हिन्दी और हिन्दूपन की झलक साफ दृष्टिगोचर होती थी।

स्वामी जी की भाषा का उदाहरण —

"जो असंभूति अर्थात अनुत्पन्न अनादि प्रकृत कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं, वे अंधकार अर्थात अज्ञान और दुखसागर में डूबते हैं, और संभूति, जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत, पाषाण और वृक्ष आदि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान पर करते हैं, वे·········महामूर्ख चिरकाल घोर दुख-रूप नरक में गिरके महाक्लेश भोगते है"

शास्त्रार्थों, तर्कों, व्याख्यानों के प्रचार के कारण उस काल की हिंदी भाषा में उत्तेजना तथा भाव प्रकाशन की क्षमता आ गई थी। व्यंग और विवाद से हिन्दी में नई स्फूर्ति आई। स्वामी जी की भाषा में हमें शुद्ध संस्कृत मिश्रित हिन्दी मिलती है और साथ साथ में धार्मिक भावना भी। "असंभूति," "अवयव" "मनुष्यादि" शब्द इस बात के परिचायक है कि स्वामी जी हिन्दी का क्या रूप चाहते थे।

स्वामी जी की लेखनी में दूसरी भाषा के प्रति उपेक्षा थी, व्यंग का भाव था और अपनी भाषा का गौरव मय चित्रण। भाषा, शैली में जादू था शैली उछलती हुई चलती थी और कभी कभी तो सारे शरीर में सिहरन सी भर देती थी, और वह स्थल बार बार पढ़ने की इच्छा होने लगती थी। जैसे —

"क्या कोई दिव्यचक्षु इन अक्षरों की गुलाई, पंक्तियों की सुघाई और लेख की सुघड़ाई अनुत्पन्न कहेगा ? क्या यही सौम्यता है कि एक सिर आकाश पर और दूसरा सिर पाताल पर छा जाता है ! क्या यही अल्दपना है कि लिखा आलूबुखारा और पढ़ा उल्लू बिचारा, लिखा छुन्नू पढ़ने में आया झब्बू । अथवा मैं इस बिषय पर इतना जोर इसलिए देता हूँ कि आप लोग सोचें समझें विचारें और अपने नित्य के व्यवहार में प्रयोग में लावें । इससे आपका नैतिक जीवन सुधरेगा, आप में परोक्ष की अनुभूति होगी और होगी देश तथा समाज की भलाई"

ऊपर के स्थल से ज्ञात हो जाता है कि स्वामी जी को दूसरी भाषा से कितनी उपेक्षा थी और अपनी भाषा से कितना प्रेम । भाषा सुन्दर और शैली प्रवाह पूर्ण होती थी । शैली कहीं पर जोर दे देकर चलती थी जिससे पढ़ने में उत्तेजना आती थी । जैसा "आप लोग सोचें समझें विचारें ।" "सोचें, समझें विचारें" में उत्तेजना का पुट है "लिखा छुन्नू पढ़ने में आया झब्बू" में व्यंग की भावना है । यही साधारणतयः स्वामी जी की शैली और भाषा थी । हाँ अन्य स्थानों पर शब्द कठिन हो गये हैं और उपदेशात्मक भाव आ गया है ।

अस्तु हम देखते हैं कि स्वामी जी के कारण सारे देश में हिन्दी का प्रचार अच्छा हुआ । आपकी शिक्षाओं का प्रभाव पंजाब आदि प्रांतों पर अधिक पड़ा । हिन्दू जो इसाई और मुसलमान बन रहे थे राजा राममोहन राय और दयानन्द जी के कारण रुक गये । आपने हिन्दी भाषा को आर्य भाषा का रूप देकर प्रत्येक आर्य के लिए उसका पढ़ना अनिवार्य कर दिया । धार्मिक व्यवहारों को सच्चा रूप देकर प्रजा के सम्मुख धर्म के वास्तविक स्वरूप को आर्य भाषा के रूप में रक्खा ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दयानन्द जी के काल में हिन्दी की यथेष्ठ उन्नति हुई और उसका प्रचार धार्मिक ग्रंथों का [illegible]

कारण बहुत बढ़ा । दयानंद जी का हिंदी-प्रसार कार्य सराहनीय है और हिंदी संसार में सदा अमर रहेगा ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और पूर्व की परिस्थिति

गद्य स्त्रोत काल और दयानंद काल में हमलोगों ने देखा कि पद्य की यथेष्ठ उन्नत न हो पाई और गद्य बढ़ता रहा । स्त्रोत काल के गद्य में जो थोड़ी नवीनता आई थीं उसका दयानंद काल में प्रसार हुआ और ऊँची श्रेणी के गद्य लेखक सम्मुख आये । स्वामी जी के अतिरिक्त राजा लक्ष्मणसिंह, फुल्लौरीजी और भट्ट जी बड़े प्रतिभाशाली लेखक हुये । स्त्रोत काल में हिन्दी गद्य को प्रसारित करने वाले राजा शिवप्रसाद ने खिचड़ी भाषा अर्थात खिचड़ी हिन्दी का चलन चलाया । राजा लक्ष्मण-सिंह ने इस काल में (दयानन्द काल) में इसका घोर विरोध करके सिद्धांत रूप में उर्दू का बहिष्कार किया । स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी खिचड़ी हिंदी का विरोध किया । इस प्रकार दयानन्द काल से ही उर्दू मिश्रित हिंन्दी का वहिष्कार होगया, तथा विशुद्ध हिंदी का प्रचलन हुआ । इस काल में हिन्दी के गद्य साहित्य में विशेष परिवर्तन हुआ और गद्य का स्थायी साहित्य बना । पंजाब में स्वामी जी तथा फुल्लौरीजी के भारी प्रभाव पड़े और इन महानुभावों ने हिन्दी का अत्यधिक प्रचार किया ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्त्रोतकाल का चला हुआ गद्य दयानंद काल में आते ही पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गया । स्त्रोत काल की हिन्दी उर्दू एकता की भावना दयानन्द काल में आकर पूर्ण रूप से लुप्त हो गई और लक्ष्मणसिंह, दयानन्द और फुल्लौरी जी ने हिन्दी को नया रूप देकर शुद्ध भाषा और शैली का प्रचलन किया । और जनता ने इन व्यक्तियों के विचारों को सराहा भी ।

जिस काल में भारतेन्दु जी का उदय होता है उसमें राजा लक्ष्मण सिंह की संस्कृत-गर्भित और राजा शिवप्रसाद की उर्दू की ओर झुकी हुई शैली, भाषा की प्रणालियों में होड़ थी । पहली शैली दयानंद तथा

उनके शिष्यों के प्रचार के कारण शक्तिशाली हो चुकी थी फिर भी शिवप्रसाद जी के कुछ इने गिने समर्थक इसका प्रतिपादन करने में लगे हुए थे।

भारतेंदु ने दो विभिन्न शैलियों को देखा और फिर दोनों को मिला कर चलती-फिरती, हँसती-बोलती, गढ़ी हुई, लचीली चमकदार भाषा को लेकर नई शैली निकाली, जिसे उस काल के अन्य लेखकों ने उस शैली को सहारा भी। आपने उर्दू भाषा के प्रचलित शब्दों को नहीं त्यागा और संस्कृत के गूढ़ शब्दों को भी नहीं लिया। इस कारण आपकी भाषा गंभीर, व्यंग, हास्य पूर्ण, साहित्यिक और साधारण समस्त भावों को लेकर चली। "भई" "कहाते" (ढको) "सो" (वह) "होई" (होही) "सुनै" "करे" आदि का प्रयोग कर भाषा से सर्व-साधारण जनता का संबंध स्थापित रक्खा। आपकी गद्य रचना में अवधी तथा व्रजभाषा की कुछ झलक है। "विद्यानुरागिता" "श्यामताई" "अधीरजमना" (अधीरमना) कृपा किया (की) नाना देश (देशों) आदि का प्रयोग करके आपने व्याकरण के अनुचित आधिपत्य से हिन्दी को स्वछंदता दिलाई है।

आपके काल में हास्य रस की अच्छी उन्नति हुई। भारतेन्दु जी ने स्वयं इस रस के ग्रन्थों की रचना की। यह हिंदी के लिए वरदान का युग था। भारतेन्दु जो अपने समस्त परिश्रम के साथ हिंदी सेवा में लगे थे आपने भारी परिश्रम और हिंदी प्रसार की सेवा हिंदी के लिए गौरव बनकर आई। गद्य में सुव्यवस्थितिता आई और आंग्ल आदि विदेशी भाषाओं के ग्रंथों का अनुवाद हिंदी में छपने लगा। नाटकों का भी इस काल में प्रचार हुआ। भारतेन्दु जी के अतिरिक्त तोताराम और श्रीनिवासदास जी ने भी नाटकों की रचना प्रारम्भ की। इसी युग में जीवन चरित्र मुंशीराम ने लिखा। इतिहासकार मुंशी देवीप्रसाद और ठाकुर शिवसिंह सेंगर भी हुए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु जी का युग हिन्दी साहित्य के लिये महान् युग था। साहित्य के विभिन्न अंगों का प्रकाशन इसी युग से आरम्भ होता है। नाटक, उपन्यास, जीवन चरित्र, इतिहास सब इस युग में लिखे गये।

भारतेन्दु जी ने स्वयं अपने थोड़े से जीवनकाल में १७४ ग्रन्थों की रचना की। आपने गद्य और पद्य दोनों में लिखा।

राष्ट्र गोरव के अभिमानी भातेन्दु ने अपनी समस्त कृतियों में राष्ट्रीयता को उठाने का प्रयास किया है और सफलता भी पाई।

इस प्रकार हम भारतेन्दु जी को कई रूपों में एक साथ पाते हैं। आप कवि, उयन्यासकार, नाटककार, पत्रकार, संग्रहकार और समालोचक थे।

आप बड़ी सी बड़ी बात को थोड़े में कह डालते थे और वह थोड़े शब्दों में कही हुई बात हृदय पर सदा के लिये अमिट छाप छोड़ जाती थी जैसे "तो कौन ऐसा है?" भगवान, कि तुम अपना पक्ष छोड़ कर शत्रु का पक्ष ले बैठे।" आपकी शैली में कभी रुक रुक कर बोलने का भी आभास मिलता है और यह रुकना आपकी शैली की विशेषता है जैसे "हटे रहना—बचे रहना—अजी दूर रहो—दूर रहो, क्या नहीं देखते?" हटे, बचे, अजी, दूर आदि पढ़ने में एक विशेष चमत्कार लाते हैं।

आपके रचे हुए नाटकों में

(१) सत्य हरीश्चन्द

(२) चन्द्रावली

(३) भारत दुर्दशा

(४) नीलदेवी

(५) प्रेम वियोगिनी

प्रधान है। इनमें राष्ट्र प्रेम शृंगारिक भावना, और स्वतंत्रत विचार धारा का अच्छा पुट मिलता है। प्रेम वियोगिनी में भारतेन्दु जी, नहीं वरन् उनकी आत्मा बोलती हुई जान पड़ती है। इसमें हास्य का सुन्दर चित्रण है। आपकी रचनाओं में राजनैतिक, सामाजिक और जातीयता भावना का बाहुल्य मिलता है। हिन्दुत्व पर भी आपको बड़ा अभिमान था, इसका विवेचन भी इनके ग्रन्थों में मिलता है।

भारतेन्दु जी ने अपने जीवनकाल में विशेष परिश्रम कर हिन्दी साहित्य को वह वस्तु प्रदान की जिसके कारण आज साहित्य महल आकाश से बातें कर रहा है। उपन्यास, नाटक और आलोचना सब को आपने एक साथ हिन्दी साहित्य को देकर विशाल कार्य किया।

आपकी शैली दो प्रकार की है पहले में भाषा असंयत और वाक्य छोटे छोटे बने हैं और दूसरी में भाषा गम्भीर और सुव्यवस्थित है प्रथम प्रकार की शैली चन्द्रावली नाटिका में दृष्टिगोचर होती है। अन्य गम्भीर विषयों के रचने के समय आपने दूसरी शैली का प्रयोग किया है। जैसे राक्षस "कुमार ऐसा नहीं है। क्योंकि वहाँ दो प्रकार के लोग हैं—एक चन्द्रगुप्त के साथी, दूसरे नंदकुल के मित्र। उनमें जो चंद्रगुप्त के साथी हैं, उनको चाणक्य ही से दुख था, नंदकुल के मित्रों को नहीं, क्योंकि वे लोग तो यही सोचते हैं कि इसी कृतघ्न चन्द्रगुप्त ने राज के लोभ से अपने पितृकुल का नाश किया है पर क्या करें, उनका कोई आश्रय नहीं है, इससे चन्द्रगुप्त के आसरे पड़े हैं। जिस दिन आपको शत्रु के नाश में और अपने पक्ष के उद्धार में समर्थ देखेंगे उसी दिन चंद्रगुप्त को छोड़ कर आप से मिल जायेंगे। इसके उदाहरण हमीं लोग हैं।"

उपर्युक्त स्थल में, हमें स्वयं पढ़ने से ज्ञात होने लगता है कि कोई व्यक्ति किसी को कुछ समझा रहा है। "आसरे पड़े" आदि शब्द पढ़ते समय कर्ण प्रिय लगते हैं कर्ण कटु नहीं यही आपकी शैली की कला है।

भारतेन्दु जी ने कभी किसी अन्य भाषा का खंडन मंडन नहीं किया वरन् अपनी भाषा को एक सुव्यवस्थिति साँचे में ढाला और हिन्दी-गद्य संसार में नई धारा बहाई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु काल में हिन्दी के समस्त अंगों की उन्नति हुई और प्रत्येक अंग को नई स्फूर्ति मिली।

सबसे महान् वस्तु जो भारतेन्दु जी ने भाषा के द्वारा जनता को दी वह राष्ट्रीय भावना थी। राष्ट्रीयता की लहर के साथ भारतवासियों में एक नवचेतना का उदय हुआ।

यदि आपके काल में यह दोष लगाया जाय कि उस समय साहित्य में अत्यधिक त्रुटियाँ थीं, भाषा भी पूर्ण रुपेन शुद्ध न थी तो यह अनुचित है। अनुचित इस कारण से है कि जिस काल में भारतेन्दु जी का उदय हुआ था वह हिंदी का प्रारम्भ काल था कोई सुव्यस्थिति लिखने के नियम नहीं थे। फिर भी हम लोगों को इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि यह काल हिन्दी गद्य का रचनात्मक काल था और इसी काल से प्रारम्भ होकर हिन्दी गद्य उच्चतम शिखर तक चढ़ता जा रहा है।

"बालकृष्ण भट्ट"

बालकृष्ण भट्ट जी जब हिन्दी संसार के सम्मुख आए तो उस समय गद्य में तीन शैलियाँ विशेष रूप से प्रचलित थीं। प्रथम शैली जिसके जन्मदाता राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' 'द्वितीय शैली जिसके प्रवर्त्तक राजा लक्ष्मणसिंह और तृतीय शैली जिसके प्रचारक भारतेन्दु जी थे', प्रयोग में लाई जाती थी। भारतेन्दु जी ने शिवप्रसाद और लक्ष्मणसिंह द्वारा प्रचलित शैलियों के आपसी मतभेद को हटाकर मध्यम नीत का अनुसरण कर नवीन शैली का प्रतिपादन किया था। इस प्रकार भारतेन्दु जी ने मध्यम मार्ग का अनुसरण कर भाषा में सुव्यवस्था ला दी थी। आपकी भाषा शैली को व्यापक बनाने की अभिलाषा थी। यह कार्य समयानुकूल ही था। आंग्ल भाषा का प्रसार बढ़ता ही जा रहा था,

उनकी सभ्यता भारत पर छाती जा रही थी, ऐसे समय में हिन्दी को व्यापक बनाने की बड़ी आवश्यकता थी। अस्तु इसी काल में उसे जीवित रखने के लिये अच्छे ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी भाषा में होने लगा।

भट्ट जी (सं० १९०१–१९७१) ने उपरोक्त तीन शैलियों का गूढ़ अध्ययन किया और अत में आपको भारतेन्दु जी की शैली विशेष रूप से पसन्द आई। आपकी भाषा और भाव प्रकाशन दोनों ही सुन्दर बन पड़े हैं फिर भी कहीं कहीं पूर्वी हिंदी और बैसवाड़ी के शब्दों का प्रयोग हो गया है। भट्ट जी ने अपनी समस्त रचनाओं में इस बात का सदा ध्यान रक्खा कि व्यापकता की दृष्टि से वे कम न होने पायें, इसी दृष्टि-कोण को सम्मुख रखते हुए आपने भाषा को भी अत्यधिक व्यापक बनाने का प्रयत्न किया। आपने अपनी रचनाओं में विदेशी भाषा के शब्दों को लेने में किंचित मात्र भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई और आंग्ल शब्दों का भी अपने लेखों में प्रयोग किया है। Education, Feeling, Speech, Society, Standard आदि शब्द सरलता से पाये जाते हैं, यहां तक कि कभी कभी आपने शीर्षक तक आंग्ल भाषा मे दे दिये जैसे (National Vigour and strength) इसके अतरिक्त आपने मध्य नीति का अनुसरण करते हुए भी कभी कभी फारसी के क्लिष्ट शब्दों को भी रख दिया है। आपकी समस्त रचनाओं में एक विचित्र प्रकार की विशेषता और निरालापन झलकता है। हास्य लेखन का भी आपको अच्छा अभ्यास था, लेखों में हास्य रस के साथ साथ स्वाभाविकता का पुट भी मिलता है। आपने अपने लेखों को छोटा बनाने की चेष्टा की है, बड़े लेखों को देखकर वह घबराते से थे।

आपकी गद्य शैली का एक उदाहरण नीचे के स्थल में दिया जा

रहा है। जिसमें आपने उर्दू और आंग्ल के शब्दों का प्रयोग स्वच्छंदता से बिना किसी हिचकिचाहट के साथ किया है:—

"यूरप के लोगों में बात करने का हुनर है।" आर्ट आफ कन्वरसेशन "यहाँ तक बढ़ा है कि स्पीच और लेख दोनों इसे नहीं पाते। इसकी पूर्ण शोभा काव्य-कला-प्रवीण विद्वन्मंडली में है। ऐसे चतुराई के प्रसंग छेड़े जाते हैं कि जिन्हें सुन कान को अत्यन्त सुख मिलता है। सुहृद-गोष्ठी इसी का नाम है।"

इसके साथ साथ जब वह स्वयं कुछ बतलाना चाहते हैं तो भाषा और शैली में गम्भीरता दृष्टिगोचर होने लगती है। जैसे:—

"हमारी भीतरी मनोवृत्ति जो प्रतिक्षण नये-नये रंग दिखाया करती है, वह प्रपंचात्मक संसार का एक बड़ा भारी आइना है, जिसमें जैसी चाहो वैसी सूरत देख लेना कोई दुर्घट बात नहीं है और जो एक ऐसा चमनिस्तान है जिसमें हर किस्म के बेल-बूटे खिले हुए हैं। ऐसे चमनिस्तान की सैर क्या कम दिल बहलाव है?"

अस्तु आपने शब्दों के संकलन के समय इस बात का ध्यान रक्खा कि शब्द सदा हृदय पर प्रभाव डालते रहें कहीं पर अस्वाभाविकता न आने पाये।

आपके निबंध साधारणतय: छोटो और ध्यान देनेवाली बातो पर होते थे। जिन पर लिखा जाना बहुत कठिन है। जैसे "कान" "बातचीत" "आँख" "नाक" आदि छोटे विषय ही आपने अपने लेख के लिये चुने।

भट्ट जी की गद्य रचना का एक और उदाहरण जिसमें कि दिखाया गया है कि आप किस प्रकार उर्दू के शब्दों को लेते नहीं हिचकते थे और उसके बाद शुद्ध हिन्दी करके शब्दों का प्रयोग कर शैली को कभी कभी कभी आनन्दहीन कर देते थे।

"......यावत् मिथ्या और दरोग की किबलेगाह इस कल्पना पिशाचिनी का कहीं ओर छोर किसी ने पाया है? अनुमान करते करते हैरान

गौतम से मुनि 'गोतम' हो गये। कणद तिनका खा खाकर किनका बीनने लगे, पर मन की मनभावनी कन्या कल्पना कर पार न पाया। 'कपिल' बेचारे पचीस तत्वों की कल्पना करते करते 'कपिल' अर्थात् पीले पड़ गए। व्यास ने उन तीनों दार्शनिकों की दुर्गति देख मन में सोचा कौन इस भूतनी के पीछे दौड़ता फिरे, यह संपूर्ण विश्व जिसे हम प्रत्यक्ष देख सुन सकते हैं सब कल्पना ही कल्पना, मिथ्या, नाशवान और क्षण भंगुर है, अतएव हेय है।"

कितना सुन्दर और हृदय में कचोट और सिहरन पैदा करनेवाला यह गद्य स्थल बन पड़ा था यदि इसमें भट्टजी ने उर्दू के स्थान पर हिन्दी का प्रयोग कर दिया होता। इसमें आये हुए उर्दू के शब्द खटकते हैं और स्थल के पढ़ने में जितना आनन्द आना चाहिए नहीं आता है। हास्य में कमी सी पड़ जाती है, भाव प्रकाशक बिखर से जाते हैं, आपने अपने लेखों में कल्पना का भी खूब सहारा लिया है और कल्पनापूर्ण विचरण में भी वे किसी से पीछे नहीं रहे हैं।" "चन्द्रोदय" इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

आपने सं० १९३४ में "हिन्दी प्रदीप" नाम का मासिक पत्र निकाला था। जिसमें सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक संबंधी एक साधारण जीवन के घरेलू लेख निकला करते थे। भट्ट जी ने स्वयं कई लेख अपनी इस पत्रिका में लिखे। आपका एक संग्रह "साहित्य सुमन" के नाम से प्रकाशित हुआ। आपने "सौ अजान एक सुजान" और "नूतन ब्रह्मचारी" नाम के दो उपन्यासों की रचना भी की थी।

इस प्रकार भट्ट जी ने अपने लिए हिन्दी में एक नया मार्ग खोला। साधारण जीवन संबंधी एवं छोटे छोटे विषयों पर आपने विद्वता पूर्ण लेख लिखकर वास्तव में हिन्दी संसार के सम्मुख एक आश्चर्य सा उपस्थित कर दिया। इन छोटे छोटे विषयों पर भी इतने विद्वतापूर्ण लेख लिखे जा सकते हैं किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। प्रतापनारायण मिश्र जी ने भी छोटे छोटे विषयों का ~~लेकर लेख लिखे~~। आपने भी

"बात" "वृद्ध" "भौं" "दांत" आदि साधारण विषयों पर लेख लिख कर एक आश्चर्य सा ला खड़ा किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि छोटे लेखों के लिखने का और साधारण विषयों के चुनने का प्रासार इसी युग से प्रारम्भ हुआ।

"प्रताप नारायण मिश्र"

भारतेन्दु काल में हिन्दी-उर्दू प्रणालियों का आपस में मेल होकर स्वाभाविकता की ओर रुझान हुआ, तथा लेखन-शैली में व्यापकता की वृद्धि हुई। प्रताप नारायण मिश्र ने ग्रामीण मुहावरों को भी हिन्दी में लाकर व्यापक बनाया तथा चुटकलेबाज़ी से उसको उज्ज्वलित किया। खेलवाड़ की भावना को लेकर चलती हुई हिंदी खूब ही मधुर बनी और उसका प्रसार भी समुचित हुआ।

अपने काल के नायक मिश्रजी (१९३६-४५) कांग्रेस के पक्षपाती थे। हिंदी, हिन्दू, हिन्दुस्तान के नारे का आपने ही लोगों को सिखलाया और जाप की रट लगाया। आपका नारा था—"बोलो भैया दे दे तान-हिंदी, हिन्दू हिन्दूस्तान।" एक अच्छे कवि और जिन्दा दिल व्यक्ति थे। आपमें प्रतिभा का भंडार भरा पड़ा था। हँसी मजाक की कविता तथा गद्य लेख बड़े चटकीले होते थे। काव्य में भी "अरे बुढ़ापा, "तोहरे मारे अब तो हम नकन्याय गयन" आदि बड़े मनोहर छंद वर्णन हैं। आपने अपनी रचनाओं में वैसवाड़े के शब्दों, वहाँ के गाँव की कहावतों का खूब प्रयोग किया है। आपने गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से लिखे। जीवन की छोटी छोटी बातों और व्यापार संबंधी विषयों पर लेख लिखे।

आपकी शैली विचित्र मस्ती लिये हुये चलती थी, जो आपके फक्कड़पन की परिचायक थी। भाषा में चुस्ती थी और भाव प्रकाशन में अपूर्व क्षमता। आपको विनोद से काफी प्रेम था और आप उसका अत्यधिक प्रयोग करने का प्रयत्न करते थे।

आपके गद्य का एक उदाहरण:—

"स्कूल में हमने भी सारा भूगोल और खगोल पढ़ डाला है, पर नर्क और बैकुंठ का पता कहीं नहीं पाया। किंतु भय और लालच को छोड़ दें तो बुरे कामों से घृणा और सत्कर्मों से रुचि न रखकर भी तो अपना अप्रच पराया अनिष्ट ही करेंगे। ऐसी-ऐसी बातें सोचने से गोस्वामी तुलसीदास जी का 'गो गोचर जहँ लगि मन जाई, सों सब माया जानेहु भाई' और श्रीसूरदास जी का 'माया मोहनी मनहरन' कहना प्रत्यक्षतम सच्चा जान पड़ता है। फिर हम नहीं जानते कि धोखे को लोग क्यों बुरा समझते हैं? धोखा खानेवाला मूर्ख और धोखा देनेवाला ठग क्यों कहलाता है? जब सब कुछ धोखा ही धोखा है, और धोखे से अलग रहना ईश्वर का भी सामर्थ्य दूर है, तथा धोखे ही के कारण संसार का चर्खा पिन्न पिन्न चला जाता है, नहीं तो ठिच्चर-ठिच्चर होने लगे वरंच रही न जाय तो फिर इस शब्द का स्मरण वा श्रवण करते ही आपकी नाक भौं क्यों सिकुड़ जाती है? इसके उत्तर में हम तो यही कहेंगे कि साधारणतः जो धोखा खाता है वह अपना कुछ न कुछ गवाँ बैठता है, और जो धोखा देता है उसकी एक न एक दिन क़लई खुले बिना नहीं रहती है, और हानि सहना व प्रतिष्ठा खोना दोनों बुरी हैं, जो बहुधा इसके संबंध में हो ही जाया करती है।"

इस ऊपर लिखे बड़े उदाहरण से हमें ज्ञात हो जाता है कि मिश्रजी की भाषा शैली, और भाव प्रकाशन में क्या क्षमता है! 'पिन्न, पिन्न" "ठिच्चर, ठिच्चर" "बरंच" आदि शब्द और धोखा ऐसे लेख में धोखे की व्याख्या कितना स्थायीपन लाती है यह देखने योग्य है। आनंद, हँसी, किल्लोल और व्यंग के साथ जब मिश्रजी की भाषा जब नाचती, उछलती हुई चलती है तो सोने में सुगंध का काम करती है।

आपके गद्य का एक और उदाहरण जो हँसी ठठोली लिये हुए चलता है—

"सच है" सब तें भले हैं मूढ़ जिन्हें न व्यापै जगतगति"। मज़े

से पराई जमा गपक बैठना, खुशामदियों से गप मार करना, जो कोई तिथि-त्योहार आ पड़ा तो गंगा में बदन धो आना, गंगापुत्र को चार पैसे देकर सेंत मेंत में धरम-मूरत धरम-औतार खिताब पाना; संसार परामर्थ दोनों तो बन गए, अब काहे की है है और काहे की खै खै ? आफत तो बेचारे ज़िंदादिलों की है जिन्हें न यों कल न वों कल; जब स्वदेशी भाषा का पूर्ण प्रचार था तब के विद्वान कहते थे "गीर्वाणवाणिषु विशाल बुद्धिस्तथान्यभाषा-रस लोलपम।" अब आज अन्य भाषा वरंच अन्य भाषाओं का करकट (उर्दू) छाती का पीपल हो रही है; अब यह चिंता खाए लेती है कि कैसे उस चुड़ैल से पीछा छूटे।"

इस स्थल में हमलोग देखते हैं कि समझाने का प्रयत्न होते हुए भी भाषा, शैली में हास्य और विनोद का अभूत पूर्व सुन्दर पुट मिलता है। हास्य और व्यंग के साथ उन्होंने जो छींटाकसी की, क्या वह भुलाई जा सकती है। "गपक" "धरम-मूरत" "धरम-औतार" "है है" "खै खै" "न यों कल न वों कल" आदि शब्द मिश्र जी की भाषा के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

आपने भी अपने लेखों के लिये छोटे-छोटे पर आवश्यक और महत्वपूर्ण विषय चुने जिन पर कि अच्छे लेखकों का लिखना भी कठिन है। भट्टजी की भांति आपने भी "बात" "भौं भौं" "वृद्ध" "दाँत" आदि पर लेख लिखे। सर्व साधारण जीवन व्यवहार में आने वाली वस्तुओं पर आपने विशेष दृष्टिपात किया। आपकी भाषा में पूर्वी शब्द काफी मिलते हैं और आपकी शैली का झुकाव भी उसी ओर अधिक आकृष्ट हुआ है।

कुल मिलाकर आपकी भाषा में त्रुटियाँ अधिक हुई हैं कहीं-कहीं पर भाव प्रकाशन में अस्थिरता आ गई है। आपने विराम का प्रयोग बहुत ही कम किया है इस कारण भाषा में स्पष्टता की कुछ कमी

दिखलाई पड़ती है। व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी आपने की हैं। कुछ अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है।

इतने सब दोषों के होते हुए भी आपके लिखने का ढंग इतना हृदयग्राही होता था जो इन समस्त त्रुटियों को ढक लेता था और शैली की मस्ती और आश्चर्य जनक विवरण के कारण हृदय नाच सा उठता था।

भट्टजी और मिश्र जी में समानता पायी जाती है और विभिन्नता भी। भट्टजी ने अपने लेखों के लिए साधारण विषयों को लिया। मिश्र जी ने भी भट्टजी की ही भांति साधारण विषयों को चुना। भट्टजी ने साहित्यक भाषा को लिया और स्थिरता की भावना का पालन किया और इसके विपरीत मिश्र जी ने दिहाती मुहावरों वहाँ के प्रचलित शब्दों को लेकर लिखा और भाषा में नवीनता ला दी। उनकी भाषा में वह चटपटापन और सादगी रहती है जो विरले लेखक में ही मिलेगी। जैसे—

"बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात जमती है, बात उखड़ती है, बात खुलती है, बात छिपती है, बात उड़ती है। हमारे तुम्हारे भी सभी काम बात ही पर निर्भर हैं। बात बात ही हाथी पाइए बात ही हाथी पावें..." इस प्रकार बात, बात ही की झड़ी बाँध दी।

फिर भी भाषा कुछ अस्थिर एवं पूर्वीपन लेकर चलती थी जैसा ऊपर कहा जा चुका है। पंडिताऊपन की भी झलक मिलती है। फिर भी वह लचीली तथा चमकीली है। आपने कानपुर से "ब्राह्मण" पत्र भी निकाला जो लगभग दस वर्ष तक चला। आप एक बड़े ग्रन्थ की रचना को सोच ही रहे थे कि आपका स्वर्गवास हो गया। "ब्राह्मण" पत्र से साहित्य की अच्छी खासी उन्नत हुई। मज़ाक के अतिरिक्त गंभीर विषयों पर भी आपने लिखा। रचनाओं में आपके व्यक्तित्व की अमिट छाप मिलती है। ग्रामीणता के साथ साथ कभी अश्लीलता भी रचनाओं

में दृष्टिगोचर हुई है। देश प्रेम, जाति प्रेम, भाषा प्रेम, आपकी थाती थे। कट्टर हिन्दुत्व के पक्षपाती थे। आपके रचे हुए ३१ ग्रन्थ मिलते हैं। अस्तु हम देखते हैं आप मननशील लेखक न होकर सर्व साधारण के मित्र और शिक्षक थे।

"बदरी नारायण चौधरी"

बदरी नारायण चौधरी प्रतापनारायण मिश्र के समकालीन थे। इस कारण उनका और उनके ग्रथों का विवेचन प्रताप नारायण मिश्र ही के काल में होता है। चौधरी जी (सं० १९१२-१९८०) के पूर्व ही हिन्दी साहित्य में प्रौढ़ता आ गई थी। भारतेन्दु, भट्ट जी और मिश्र जी के सतत् प्रयत्न हिन्दी को नया रूप दे चुके थे। हिन्दी में नवचेतना का प्रादुर्भाव हो चुका था। भाषा में, शैली में और प्रवाह में परिवर्तन हो रहा था।

चौधरी जी जब हिन्दी क्षेत्र में अवतीर्ण हुए उस समय हिन्दी में भारतेन्दु भट्ट और प्रताप, के प्रताप से बल आ चुका था। चौधरी जी ने वह बल लेकर अपनी समस्त नव शक्ति के सहारे उठने का प्रयास किया और सफल सफलता भी प्राप्ति की

चौधरी जी स्वयं एक बड़े कवि थे। आपकी कविता से नवचेतना का संदेश मिलता था और जागरण भी। कवि होने के कारण आपकी भाषा बल खाती चलती थी। शैली में भी विलक्षणता दृष्टिगोचर होती थी। पीछे के लेखकों से यदि आपकी शैली की समता की जाय तो उसमें बड़ा अन्तर दृष्टिगोचर होता है। आप के वाक्य बहुत लम्बे लम्बे होते थे। यहाँ तक कि कभी कभी वे एक डेढ़ पृष्ठ तक पहुंच जाते थे। इतने लम्बे वाक्य लिखे जाने के कारण कभी कभी अस्पष्टता दृष्टिगोचर होने लगती थी। आपने भाषा को दुरूह बनाने का प्रयत्न किया था। भारतेन्दु जी के मित्र होने के कारण वे कभी कभी भारतेन्दु पर और उनके लिखने पर झुंझला भी पड़ते थे। आप हमेशा भारतेन्दु जी को यह

सीख देने के प्रयत्न में रहे कि लिखने के बाद रचना को कम से कम एक दो बार अवश्य देखो, ऐसा करने से लेख में नवीनता आ जायगी।

चौधरी जी दीर्घ समास एवं चमत्कार पूर्ण आलंकारिक सानुप्रास भाषा लिखते थे, उर्दू शब्दों का मान कम करते थे। आपका गद्य और पद्य दोनों पर समान रूप से अधिकार था।

आपके गद्य का एक उदाहरण:—

"जैसे किसी देशाधीश के प्राप्त होने से देश का रंग ढंग बदल जाता है तद्रूप पावस के आगमन से इस सारे संसार ने भी दूसरा रंग पकड़ा, भूमि हरी-भरी होकर नाना प्रकार की घासों से सुशोभित हो गई, मानो मारे मोद के रोमांच की अवस्था को प्राप्त भई। सुन्दर हरित पत्रावलियों से भरित तरुगनों की सुहावनी लताएँ लिपट लिपट मानो मुग्ध मयंक-मुखियों को अपने प्रियतमों के अनुरागालिंगन की विधि बतलातीं। इनसे युक्त पर्वतों के शृंगों के नीचे सुन्दरी-दरी-समूह से स्वच्छ श्वेत जल-प्रवाह ने मानो पारा की धारा और बिल्लौर की ढार को तुच्छ कर युगल पार्श्व की हरी-भरी भूमि के, कि जो मारे हरेपन के श्यामता की झलक दे अलक की शोभा लाई है, बीचोबीच माँग सी काढ़ मन माँग लिया और पत्थर की चट्टानों पर सुंबल अर्थात् हंसराज की जटाओं का फैलना बिथरी हुई लटों के लावण्य का लाना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आपके वाक्य कितने लम्बे और गंभीर होते थे। आपके शब्दों के चयन में कोई दोष नहीं बतलाया जा सकता। हाँ, वाक्यों के लम्बे होने के कारण अस्पष्टता दृष्टिगोचर होने लगती है। नहीं, फिर भी चौधरी जी ने निरालेपन से गद्य लेखन प्रारम्भ किया, यह सत्य है।

आपकी गद्य रचना का एक और उदाहरण जिसको पढ़ने से तबियत कुछ ऊब सी उठती है।

"प्रयाग की बीती युक्तप्रांतीय महाप्रदर्शिनी के सुबृहत आयोजन और उसके सभारंभोत्कर्ष के आख्यान का प्रयोजन नहीं है; क्योंकि वह स्वतः विश्वविख्यात है। उसमें सहृदय दर्शकों के मनोरंजन और कुतूहलवर्धनार्थ जहाँ अन्य अनेक अद्भुत और अनोखी क्रीड़ा, कौतुक और विनोद के सामग्रियों के प्रस्तुत करने का प्रबन्ध किया गया था, स्थानिक सुप्रसिद्ध प्राचीन घटनाओं का ऐतिहासिक दृश्य दिखाना भी निश्चित हुआ और उसके प्रबन्ध का भार नाट्यकला में परम प्रवीण प्रयाग युनिवर्सिटी के लॉ-कालेज के प्रिंसिपल श्रीयुत मिस्टर आर० के० सोराबाजी एम० ए०, बैरिस्टर-ऐट-ला को सौंपा गया; जिन्होंने अनेक प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओं को छाँट और उन्हें एक रूपक में ला सुविशाल समारोह के सहित उनकी लीला (पेजेंट) दिखाने के अभिप्राय से कथा-प्रबन्ध-रचना में कुछ भाग का तो स्वयं निर्माण करना एवं कुछ में औरों से सहायता लेनी स्थिर कर उन पर उसका भार अर्पण किया।

ऊपर के बारह, चौदह पंक्तियों का वाक्य अर्द्ध-विराम के सहारे बढ़ता गया है जो एक सीमा पार करने के बाद खटक सा उठता है। इतने लम्बे वाक्य सरसता नहीं नीरसता लाते हैं। आपने अपनी भाषा में लम्बे शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे "सुबृहत" सभारंभोत्कर्ष" "कुतूहलवर्धनार्थ" आदि। फिर भी हम ऊपर की भाषा में एक विचित्र प्रकार की शैली का आभास पाते हैं। आपने "तो भी" आदि शब्दों का भी प्रयोग अपनी भाषा में किया है पर औरों के देखते आपकी भाषा प्रौढ़ और गठी हुई है। कविता और गद्य दोनों लिखने के कारण आपकी रचनाओं में काव्य झलक, गद्य गीतों का आभास सा मिलता है। आपको प्रौढ़ लेखनी और भाषा ने हिन्दी की महान सेवा की जो भुलाई नहीं जा सकती।

आपने कभी किसी बात को साधरण ढंग से नहीं लिखा, उसको आप लेखनी द्वारा ऐसा बना देते थे कि समझना कठिन हो जाता था।

इस प्रकार साधारण सी बात को कठिन शब्दों में कहना, पद-पद

भर वाक्यों को पूर्ण करना, लम्बे-लम्बे शब्दों को लिखना आदि बातें इस चीज़ की परिचायक हैं कि वे चाहते थे कि हिन्दी का रूप अपना परिवर्तन करे और उनके बताये मार्ग पर चले, परन्तु सम्भवतः वह भूल गये होंगे कि ऐसा करने से हिन्दी की हानि होगी लाभ नहीं।

आलोचना का श्री गणेश चौधरी जी ने ही किया। आलोचना की जाने वाली पुस्तक के सम्पूर्ण गुण, दोषों को निकाल कर रख देना और उसकी भली भांति विवेचना कर देने की प्रथा का सूत्रपात आपने ही किया। श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर" को चौधरी जी ने ध्यानपूर्वक आलोचना की थी।

आपने दो पत्रिकाओं को भी जन्म दिया था "आनंद-कादम्बिनी" (मासिक) और "नागरी नीरद" (साप्ताहिक) आप के प्रयत्नों पर ही निकला था। इन पत्रों को देख कर ऐसा ज्ञात होता था कि मानों चौधरी जी ने इनका चलन केवल अपने लिए ही किया क्योंकि इन पत्रों में इनके ही लेख विशेषतया रहते थे। आपने "भारत सौभाग्य" और "वारांगना रहस्य" नाम के दो नाटक भी लिखे। शोक है कि आपका दूसरा नाटक पूरा न हो पाया।

इस प्रकार चौधरीजी ने हिन्दी की महान सेवा की। कविता और उसके साथ गद्य लेख, आलोचना, नाटक सब पर ध्यान दिया अपनाया और सफलता भी प्राप्त की। आपकी हिन्दी सेवा सराहनीय है।

"अम्बिका दत्त व्यास"

प्रताप नारायण मिश्र काल के अंतरगत ही अम्बिका दत्त व्यास का नाम आता है। आप हिन्दी के प्रतिभाशाली लेखकों में से एक थे। उस काल की परिस्थिति को ही अपना माध्यम मानकर अम्बिकादत्तजी ने अपनी गद्य रचना प्रारम्भ की।

आप एक धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। धर्म को छोड़ आपने किसी भी चीज की परवाह न की। स्वयं एक बड़े उपदेशक होने के

साथ साथ आपकी प्रत्येक नसों में सनातन धर्म कूट कूट कर भर गया था।

आप संस्कृत के प्रकांड पण्डित थे। संस्कृत भाषा पर आपका अच्छा अधिकार था, फिर भी आपका झुकाव हिन्दी की ओर अधिक हुआ।

व्यासजी की गणना हिन्दी के कवियों में भी होती है। आपने हिन्दी में बहुत दिनों तक कविता की। गम्भीर प्रकृति होने के कारण आपकी कविता में गम्भीरता की झलक भी दृष्टिगोचर होती है।

आपने अपनी रचना अधिकतर गम्भीर विषयों पर ही की और उसके लिये आप उपयुक्त भी थे। आपका गद्य-काव्य मीमांसा भी अच्छा लेख है तथा ऐसे बहुत से लेख आपने लिखे। आपकी भाषा पंडिताऊपन लिये हुए चलती है "इनने" "उनने" "सूचना करने "(देने)" आदि शब्दों का आपने प्रयोग किया हैं। शुद्धता की दृष्टि से यह शब्द दोष पूर्ण है। यद्यपि इस प्रकार के प्रयोग उस समय के कई गद्य लेखकों में मिलते हैं और उस काल में उनका चलन भी था, फिर भी आज की आलोचनात्मक दृष्टि से वे अशुद्ध हैं।

आप एक प्रकाण्ड पंडित तथा सुवक्ता थे। आपके समय में धर्म संबधी व्याख्यानों की धूम मची रहती थी। आपने धर्म सम्बन्धी कई पुस्तकों की रचना भी की।

आपने "अवतार-मीमांसा" नाम की सुन्दर पुस्तक की रचना की थी। यह पुस्तक धर्म संबंधी है। वैसे तो आपकी और भी पुस्तकें हैं, पर धर्म सम्बन्धी पुस्तकों में उपर्युक्त पुस्तक सर्व श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त आपने बिहारी के दोहों के भाव को विस्तार के साथ कहकर "बिहारी विहार" नामकी पुस्तक रचना की। यह आपका बड़ा काव्य ग्रन्थ था। गद्य में आपकी निम्न पुस्तकें प्रसिद्ध हैं।

१—ललिता नाटिका

२—गो संकट नाटक

३—गद्यकाव्य मीमांसा

आपके गद्य का एक उदाहरणः—

"······चुप रहने से तो भया बस नास्तिक के भी परदादा भए ईश्वर को माना जैसे न माना और सिर झुकाया तो आप ऐसे बुद्धि के अजीर्णवाले पुरुष कह उठेंगे कि आप तो दिक्पूतक हैं यदि हम ईश्वराय नमः कहेंगे तो आप कहेंगे कि आप तो ई श्व-र इन अक्षरों के पूजक हैं। पर क्या सचमुच आप ऐसी टोंकटॉक कर सकते हैं। कभी नहीं क्योंकि संसार में कोई ऐसा है ही नहीं जो ईश्वर के प्रतिनिधि शब्दों के झमेले में न पड़ा हो······।"

ऊपर के स्थल से हमें ज्ञात हो जाता है कि व्यासजी की शैली कैसी है। "टोकटॉक" आदि शब्द और विवाद एवं विचार की भावना स्वयं हृदय में विचार उत्पन्न कर देती है। उस काल के खंडन-मंडन में आपने भी खूब भाग लिया।

आपकी भाषा में स्थान स्थान पर शिथिलता पाई जाती है, भाव पूर्ण रूप से निखर नहीं पाते। इसी कारण कुछ समालोचकों को आपकी भाषा भ्रामक, त्रुटिपूर्ण, पंडिताऊपन लिये हुए शिथिल जान पड़ती है पर उस युग को देखते हुए यह क्षम्य मानी जा सकती है। फिर भी व्यासजी हिन्दी के अच्छे लेखक थे इसमें कोई सन्देह नहीं कर सकता।

"श्रीनिवास दास"

श्रीनिवासदास भारतेन्दु के समकालीन लेखकों में से एक थे। आपके यहाँ व्यापार होता था। आपको व्यापारिक कार्यों से ज़रा भी रुचि नहीं थी इसी कारण आप व्यापारिक कार्यों से अत्यधिक समय निकालने का प्रयत्न करते थे और बचा खुचा समय साहित्य सेवा में लगाते थे।

श्री निवास दास जी (१६०८–१६४४) ने गद्य रचना में और मुख्यतया उपन्यास में नई स्फूर्ति दी इसको सब आलोचक एकमत से मानते हैं। आपका "परीक्षा गुरु" नाम का उपन्यास इतना सुन्दर

बना कि जिसको पढ़ कर लोग आश्चर्य विमुग्ध हो गये। आजकल तो उसकी प्रतियाँ मिलती ही नहीं और मिलती भी हैं तो कठिनता के साथ पर इसमें सन्देह नहीं कि वह हिन्दी की स्थायी निधि है। "परीक्षा गुरु" ने श्रीनिवास को श्रीनिवास बनाया। इसके अतिरिक्त आपने नीचे लिखे हुए नाटकों की रचना भी की जो हिन्दी साहित्य में आज तक आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

(१) रणधीर मोहनी

(२) संयोगिता-स्वयंवर

(३) तप्तावरण

आपकी रचनाओं में संसार की समस्त बातों का विशद रूप से वर्णन रहता था। नाटक के अतिरिक्त आपका 'परीक्षा गुरु' उपन्यास शिक्षा से ओत प्रोत है।

आपकी भाषा प्रवाहपूर्ण थी और मुहावरों के साथ हँसी ठठोली करती हुई चलती थी। प्रौढ़ता का आभास आपकी भाषा में मिलता था। उर्दू शब्दों का प्रयोग भी आपने किया है। आपने अंग्रेज़ उपन्यासकारों की शैली का अनुसरण भी किया है।

उदाहरण:—

"उपाय करने की कुछ ज़रूरत नहीं है, समय पाकर सब भेद अपने आप खुल जाता है" लाला ब्रजकिशोर कहने लगे। "मनुष्य के मन में ईश्वर ने अनेक प्रकार की वृत्तियाँ उत्पन्न की हैं, जिनमें परोपकार की इच्छा, भक्ति और न्यायपरता धर्म प्रवृत्ति में गिनी जाती है"

"जैसे अन्न प्राणाधार है परन्तु अति भोजन से रोग उत्पन्न होता है" लाला वृजकिशोर कहने लगे" देखिये, परोपकार की इच्छा अत्यन्त उपकारी है परन्तु हद से आगे बढ़ने पर वह फिजूलखर्ची समझी जायगी और अपने कुटुम्ब परिवारादि का सुख नष्ट हो जायगा। जो आलसी अथवा अधर्मियों की सहायता की। तो उससे संसार मे आलस्य और पाप की वृद्धि होगी। इसी तरह कुपात्र में भक्ति होने से लोक

परलोक दोनों नष्ट हो जायँगे। न्यायपरता यद्यपि सब वृत्तियों को समान रखने वाली है, परन्तु इसकी अधिकता से भी मनुष्य के स्वभाव में मिलनसारी नहीं रहती, क्षमा नहीं रहती। जब बुद्धिवृत्ति के कारण किसी वस्तु के विचार में मन अत्यन्त लग जायगा तो और जानने लायक पदार्थों की अज्ञानता बनी रहेगी। आनुषंगिक प्रवृति के प्रबल होने से जैसा संग होगा वैसा रंग तुरन्त लग जायगा।"

ऊपर के स्थल से हमें ज्ञात होता है यही आपकी मुख्यतयः शैली थी और भाषा। "जैसा संग वैसा रंग" इसी प्रकार के प्रयोग भी अधिक मिलते हैं। वाक्य के बीच "लाला ब्रजकिशोर कहने लगे" सारे भावों और क्रम को बिगाड़ कर रख देता है। यदि इसी प्रकार का चलन हिन्दी के उपन्यासों में हो जाता तो उसकी सारी सुन्दरता जाती रहती। आपकी भाषा में "इस्की" "उस्की" "उस्से" "किस्पर" "तिस्पर" "सै" "मै" का भी प्रयोग मिलता है। आपने कुछ शब्दों को अशुद्ध भी लिखा है। उच्च विचारों और पुस्तकों में गम्भीरता का पुर लाने पर आपकी लेखनी निखर उठी है और इसी ने आपको ऊपर भी उठाया।

"ठाकुर जगमोहन सिंह"

जगमोहनसिंह जी जीवन (१९१४-५५) ने अपनी निजी साहित्यिक शैली को चलाया और उसका प्रचार भी किया। आपकी शैली का उस काल में मान भी खूब हुआ। ठाकुर जी हिन्दी के साथ साथ आंग्ल और संस्कृत भाषा के भी प्रकांड पंडित थे। इस कारण आपकी हिन्दी गद्य रचना में संस्कृत और आंग्ल भाषा की छाप भी दृष्टिगोचर होती है।

आपके वाक्य छोटे और सुव्यवस्थिति होते थे। शैली भाषा में स्थायीपन की झलक मिलती है।

वैसे आप में भी "तुम्हें" "जिसै दूँ" "हम क्या करैं" "धरे हैं" आदि पूर्वी भाषा का रूप मिलता है फिर भी आपकी भाषा इतनी स्वाभाविक

बन गई है जितनी की उस काल के अन्य लेखकों में भी नहीं मिलती।

आपकी रचनाओं में अन्य भाषा का भी प्रभाव था। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं आंग्ल और संस्कृत शैली का कुछ-कुछ रूप इमें आता हुआ दीखता है, फिर भी भारतीयता के सांचे में वह ऐसा ढला है कि उस पर कुछ भी आक्षेप नहीं किया जा सकता।

आपने अपने संस्कृत ज्ञान का उपयोग हिन्दी साहित्य में किया है, बहुत से संस्कृत शब्दों का अभूतपूर्व मिलान देख कर आश्चर्य सा होता है।

आपकी रचनाओं को देखकर ऐसा अनुभव होता है कि आपको पर्यटन से बहुत प्रेम था। आपने भारत के समस्त भागों को बन, पर्वत, झील, नदी आदि का भ्रमण कर प्राकृतिक सुन्दरता के ज्ञान को अर्जित किया होगा।

नीचे आपके रचे हुए गद्य में से एक स्थल उदाहरण के रूप में दिया जा रहा है जिससे कि इस बात का पता चलता है कि आपको सुन्दर दृश्यों से कितना प्रेम था और उसका कितना अनुभव।

"मैं कहाँ तक उस सुन्दर देश का वर्णन करूँ ?......जहाँ की निर्झरिणी जिनके तीर व नीर से भिरे, मदकल कूजित विहंगमों से शोभित हैं, जिनके मूल से स्वच्छ और शीतल जल-धारा बहती है और जिनके किनारे के श्याम जंबू के निकुञ्ज फलभार से नमित जनाते हैं शब्दायमान होकर झरती है।.... जहाँ के राल्लकी वृक्षों की छाल में हाथी अपना बदन रगड़-रगड़ कर खुजली मिटाते हैं और उनमें से निकला क्षीर सब बन के शीतल समीर को सुरभित करता है। मंजुबंजुल की लता और नील निचुल के निकुञ्ज जिनके पत्ते ऐसे सघन जो सूर्य्य की किरनों को भी नहीं निकलने देते, इस नदी के तट पर शोभित है"

आपकी प्राकृतिक वर्णन का एक उदाहरण ऊपर का गद्य स्थल है। अब आपके गद्य का दूसरा उदाहरण—

"लो वह श्यामलता थी, यह उसी लता-मंडप के मेरे मानसरोवर

की श्यामा, सरोजनी है, उसका पात्र और कोई नहीं जिसे दूँ। हाँ एक भूल हुई कि श्यामा-स्वप्न एक प्रेमपात्र को अर्पित किया गया। पर यदि तुम ध्यान देकर देखो तो वास्तव में भूल नहीं हुई। हम क्या करें तुम आप चाहती हौ कि ढोल पिटैं, आदि ही से तुमने गुप्तता की रीति एक भी नहीं निबाही, हमारा दोष नहीं तुम्हीं विचारो मन चाहे तो अपनी 'तहरीर' और 'एकबाल' देख लो दफ्तर के दफ्तर मिसिल बंदी होकर घेरे हैं अपने कह कर बदल जाने की रीति अधिक थी इसलिये, 'प्रेमपात्र' को स्वप्न समर्पित कर साक्षी बनाया अब कैसे बदलोगी।"

इस प्रकार हम देखते हैं जैसा कि कहा जा चुका है "करैं" "हौ" "पिटैं" "एकबाल" आदि शब्दों का भी प्रचलन मिलता है। ठाकुर जगमोहनसिंह जी ने "श्यामा-स्वप्न" नाम के ग्रन्थ की रचना की थी।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि विद्वानों के मतानुसार जगमोहन सिंह जी का गद्य सुन्दर, कांतिपूर्ण तथा संस्कृत के सामंजस्य से पूर्णरूपेन सुवासित है। अपने समय के आप अच्छे साहित्यकार थे।

"बाबू बालमुकुंद गुप्त"

बाबू बालमुकुंद जी ने अपने काल की सामाजिक और राजनैतिक परस्थितियों पर लेख लिखे हैं जिनमें "शिवशंभु का चिट्ठा" बहुत ही प्रसिद्ध हुआ है।

गुप्त जो उर्दू भाषा के पंडित थे, वर्षों तक आपने उर्दू में लेख लिखे और उर्दू समाचार पत्र का सम्पादन भी किया इस कारण आपकी भाषा में उर्दू शब्दों की बाहुलता है। आपने उर्दू के शब्दों को संस्कृत के प्रचलित शब्दों में मिला कर शैली में अजब चमत्कार दिखाया है। आपकी भाषा चुभती हुई होती थी। पत्र-सम्पादन कला में सिद्धहस्त हो कर गुप्त जी ने पाठकों की नसों को पहचान लिया था, ऐसा उनकी रचनाओं को पढ़कर ज्ञात होता है।

आपने अपनी भाषा और शैली में व्यवहारिकता का बहुत ध्यान रक्खा है और सदा इस बात का प्रयत्न किया कि भाषा में कठिन

शब्द जहाँ तक हो सके न आयें। अस्तु हम लोग देखते हैं कि आपकी भाषा का जितना पाठकों में आदर हुआ, उतना पंडित गोविन्दनारायण मिश्र की भाषा का नहीं (मिश्रजी ने बहुत सी कठिन शब्दों को लेकर हिन्दी गद्य को रचना की थी जैसे :—"मुक्ताहरी नीर-क्षीर-विचार-सुचतर-कति-कोविद-राजराजहिय-सिंहासन-निवासिनी-मंद-हसिनी-त्रिलोक-प्रकाशिनी सरस्वती माता के अति दुलारे, प्राणों से प्यारे पुत्रों की अनुपम अनोखी अतुल बलवाली परम प्रभावशाली, सुजन-मन-मोहनी नवरस-भरी सरस सुखद विचित्र बचन-रचना का नाम ही साहित्य है।" इसके विपरीत गुप्त जी की साधारण परन्तु प्रभावशालनी, सरल किन्तु स्थायीपन का पुट लिये हुए, उर्दू के शब्दों की बाहुलता में भी कर्णप्रिय होकर बहार लिए हुए थी। इसी कारण यह भाषा पाठकों को मिश्र जी की भाषा से सुन्दर लगी और पाठकों ने इसका अत्यधिक आदर भी किया।

आपकी गद्य रचना का उदाहरण:—

"इतने में देखा कि बादल उमड़ रहे हैं। चीलें नीचे उतर रही हैं। तबिअत भुरभुरा उठीं। इधर भग, उधर घटा-बहार में बहार। इतने में वायु का वेग बढ़ा, चीलें अदृश्य हुईं। अँधेरा छाया, बूदें गिरने लगीं, साथ ही तड़ तड़ धड़ धड़ होने लगो। देखा ओले गिर रहे हैं। ओले थमे; कुछ वर्षा हुई, बूटी तैयार हुई। 'बमभोला' कहकर शर्माजी ने एक लोटा भर चढ़ाई। ठीक उसी समय लाल-डिग्गी पर बड़े लाट-मिंटो ने बंगदेश के भूत पूर्व छोटे लाट इडवर्न की मूर्ति खोली। ठीक एक ही समय कलकत्ते में यह दो आवश्यक काम हुये। भेद इतना ही था कि शिवशंभु शर्मा के बरामदे की छत पर बूंदे गिरती थीं और लार्ड मिंटो के सिर या छाते पर।"

उपरोक्त स्थल से हम गुप्त जी की कला का यथार्थ ज्ञान हो सकता है। कितनी सुन्दर और सरल भाषा में वह बात का दिग्दर्शन करा देते थे। छोटे-छोटे वाक्य, मुहावरेदार भाषा, भावप्रकाशन स्पष्ट और शैली

में स्थायी भाव, रचना में चार चाँद लगा देते थे। "जो बात आज आठ-आठ आँसू रुलाती है, वही किसी दिन बड़ा आनंद उत्पन्न कर सकती है।" "गुलाबी नशे में विचारों का तार बँधा कि बड़े लाट फुरती से अपने कोठरी में घुस गये होंगे और दूसरे अमीर भी अपने अपने घरों में चले गये होंगे" यह वाक्य आपकी रचनाओं की स्पष्टता के परिचायक हैं। गुप्त जी ने आलोचना भी कीं। भाषा की प्रौढ़ता के कारण वह भी उच्चकोटि की हुई। सामाजिक और धार्मिक विषयों पर विचार तो आपके प्राचीन थे, आपकी ज़िंदादिली भारत मित्र पत्र को और लेखों को बहुत ही सुपाठ्य बनाती थी। आपके लेखों में सजीवता तथा चरित्र में सौहार्द्रपन की झलक थी। "शिवशंभु का चिट्ठा" मज़ाक और चोट करने वाली सत्य बातों से भरा है। समाचारों में नवीनता तथा समाजिक विचारों के लेखों की वृद्धि में आपने भी खूब हाथ बटाया।

"पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी"

महावीर प्रसाद जी द्विवेदी का प्रादुर्भाव हिन्दी साहित्य के लिये वरदान के रूप में आया। वैसे तो भारतेन्दु जी के सतत् प्रयत्नों द्वारा हिन्दी का प्रसार बहुत काफी हो गया था और अधिकाधिक लोग उसे अपने प्रयोग में लाने लगे थे फिर भी उस समय तक भाषा में स्थिरिता न थी। शुद्धता की दृष्टिकोण से भी वह कोसों दूर थी। जो लेखक इस काल में जैसे चाहता था लिखता था। उस काल का नारा "भाषा अपनी" "भाव अपने" "शैली अपनी" हिन्दी को नियम बद्ध होने नहीं दे रही थी। व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियाँ बड़े बड़े लेखको से होती थीं।

अस्तु द्विवेदी जी के पूर्व हिन्दी का प्रसार तो अवश्य था पर स्थिरिता न थी। भाव थे पर भलीभाँति लेखकों को प्रकाशन की कला न ज्ञात थी, शैली थी पर व्याकरण की शुद्धता न थी, इस प्रकार उस समय की हिन्दी निर्बल थी और उसे सहायता की आवश्यकता थी।

ऐसे ही समय में रेल की नौकरी से ऊब कर महावीर प्रसाद द्विवेदी (जन्म सं० १९२१) ने उसको तिलांजलि दे दी और अपना सारा ध्यान साहित्य की ओर लगाया। उस दिन से हिन्दी के भाग्य जागे और वह नियमित हो ऊपर उठने लगी।

सं. १९०३ में द्विवेदी जी ने "सरस्वती" के सम्पादन का भार ग्रहण किया और जब तक द्विवेदी जी संपादक रहे तबतक इसके बराबर और कोई हिन्दी की पत्रिका न पहुँच सकी।

साहित्य में पूर्ण रूप से आ जाने के पश्चात् जब द्विवेदी जी ने अपने चारों ओर दृष्टि घुमायी तो उन्हें बड़ी निराशा सी हुई। हिन्दी साहित्य की उस समय की शोचनीय दशा को तथा अशुद्धता को नष्ट करने के लिये द्विवेदी जी ने अपना सक्रिय पग आगे बढ़ाया। आपने सरस्वती में आनेवाली रचनाओं की आलोचना प्रारम्भ की और अशुद्ध लिखनेवाले, अथवा व्याकरण सम्बन्धी अवहेलना करनेवाले लेखकों को चेतावनी भी दी।

इसका परिणाम यह हुआ कि लेखकगण समझ बूझकर लिखने लगे। विरामादि चिन्हों का उचित प्रयोग करने लगे। इसके अतिरिक्त और उन सब अशुद्धियों को दूर करने लगे जिनकी कि हरिश्चन्द्र काल से भरमार थी। ऐसा होने से हिन्दी में प्रचलित समस्त दुर्बलताओं का नाश होने लगा और हिन्दी शुद्ध होती गयी, लेख, भावपूर्ण होते गये, शैली स्पष्ट होती गयी और रचनाओं में गम्भीरता का पुट भी आ गया।

इसी प्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी सुलेखक, श्रेष्ठ पत्रकार और व्याकरण के पक्षी थे। सरस्वती-सपादन द्वारा आपने अन्य बहुतेरे लेखकों की भाषा-सम्बन्धिनी उन्नति पर काफी प्रभाव डाला और हिन्दी को सुसंस्कृत करने में अत्यधिक परिश्रम किया इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। आप हिंदी की एक रूपता के सहायक थे।

के गुण दोपों को बताकर आपने हिन्दी को शुद्ध बनाया यह सर्व-विदित है। इसके अतिरिक्त आपने लाला सीताराम वाली एक पुस्तिका की समालोचना की है, किंतु वह समालोचना न होकर व्याकरण सम्बन्धी दोष-प्रदर्शन-मात्र है। "नैषध-चरित-चर्चा" में समालोचना का कुछ रूप आया है। "कालीदास की निरंकुशता" व्याकरण सम्बन्धी और कहीं-कहीं शाब्दिक प्रयोगों पर विचार का निबंध मात्र है।

द्विवेदी जी ने छोटी बड़ी पुस्तकों के लिखने के अतिरिक्त लेख भी लिखे हैं। आप के लेख व्यंगात्मक, आलोचनात्मक, तथा शिक्षाप्रद भावना को लेकर ही अधिकतर चले हैं।

भाषा एवं शब्दों के संकलन में द्विवेदी जी ने विशेष प्रतिभा दिखायी है। आप सदा इस प्रयत्न में रहे कि अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों का निरादर न हो। आपकी अपनी रचनाओं में हिन्दी शब्दों के अतिरिक्त आंग्ल एवं उर्दू भाषा के साधारण शब्दों का चलन मिलता है। साधारण विदेशी भाषा के शब्दों के प्रयोग पर आपने लेखों को प्रोत्साहन भी दिया। आपके शब्दों का संकलन और भाव प्रकाशन की शैली रचनाओं में सोने में सुगन्ध का काम करती है। भाषा में चमत्कार सा आ जाता है। वाक्य उठता हुआ, ओज पाता हुआ बढ़ता है फिर शब्दों के उतर के साथ अपने स्थल पर आ जाता है। यही आप की शैली की विशेपता है।

द्विवेदी जी के पूर्व के लेखकों में भाव प्रकाशन की कला उन्नतिशील न थी। लेखकों के विचार बिखरे बिखरे से रहते थे। उनमें क्रमबद्धता नहीं आ पाती थी, इस कारण वह प्रवाह और विषय के दृष्टिकोण से दोष पूर्ण थे।

द्विवेदी जी ने ही इसके विरुद्ध प्रथम आवाज उठायी और लेखकों की इस कमजोरी को दूर किया। इसका परिणाम जो हुआ, वह हम

लोगों को प्रत्यक्ष दिखायी पड़ता है। इसका सारा श्रेय द्विवेदी जी को मिलना चाहिये।

आपने अपनी पृथक पृथक रचनाओं में भिन्न भिन्न शैलियों का अनुकरण किया है। जिस विषय में जितनी गम्भीरता की आवश्यकता होती उतनी ही दी। ऐसी रचनाओं में आप अधिक गहराई तक नहीं गये। जहाँ पर हँसी की आवश्यकता थी, छींटाकसी में बात का विवेचन भली भाँति हो सकता था, वहाँ पर आप के व्यंगात्मक भावना का निर्देशन किया। जहाँ पर खोज की बात थी, वहाँ पर गम्भीरता का पुट अधिक मिलता है। किसी पुस्तक की आलोचना करते समय आप की शैली बिलकुल बदल जाती है। यह सब भाव प्रकाशन की कला और क्षमता थी। भिन्न भिन्न विषयों पर भिन्न भिन्न प्रकार की शैली देकर द्विवेदी जी ने उस काल के लेखकों के सम्मुख एक चकाचौंध उत्पन्न कर दिया। वह वस्तु उस युग की महान देन थी इसमें कोई सन्देह नहीं।

इस प्रकार आप की शैली के तीन विभाजन किये जा सकते हैं।

१—आलोचनात्मक शैली

२—गवेषणात्मक शैली

३—व्यंगात्मक शैली

आलोचनात्मक शैली में द्विवेदी जी की भाषा स्थिर रही है और उसके साथ गम्भीर भी। भाषा में कहीं पर भी हँसी मज़ाक की झलक नहीं वरन् एक ओज और सत्य की भावना है। उदाहरण—

"हाय वाल्मीक! जनकपुर में तुम उर्म्मिला को सिर्फ़ एक बार वैवाहिक-वधू वेश में, दिखाकर चुप हो बैठे। अयोध्या आने पर सुसराल में उसकी सुधि-यदि आप को न आई थी तो न सही पर, क्या लक्ष्मण के वन-प्रयाण समय में भी उसके दुःखाश्रु मोचन करना आप को उचित न जँचा? रामचन्द्र के राज्याभिषेक की जब तैयारियाँ हो थी, जब राजान्तपुरही क्यों सारा नगर नन्दनभवन बन रहा था उस समय नवला जउर्म्मिला कितनी खुशी मना रही थी, सो क्या आपने नहीं देखा?

अपने पति के परमाराध्य रामको राज्य-सिंहासन पर आसीन देख उर्मिला को कितना आनन्द होता, इसका अनुमान क्या आपने नहीं किया। हाय वही उर्मिला एक घंटे बाद राम-जानकी के साथ निज-पति को १४ वर्ष के लिये वन जाते हुए देख छिन्नमूल शाखा की तरह राज-सदन की एक एकांत कोठरी में भूमि पर लेटती हुई क्या आपके नयन गोचर नहीं हुई? फिर भी उसके लिये आपकी 'वचने दरिद्रता' उर्मिला वैदेही की छोटी बहिन थी। सो उसे बहिन का वियोग सहना पड़ा और प्राणाधार पति का भी वियोग सहना पड़ा पर इतनी घोर दुःखनी होने पर भी आपने दया न दिखाई। चलते समय लक्ष्मण को उसे एक बार आँख भर देख भी न लेने दिया। जिस दिन राम और लक्ष्मण सीता देवी के साथ, चलने लगे—जिस दिन उन्होंने अपने पुर त्याग से अयोध्या नगरी को अंधकार में, नगरवासियों को दुःखोदधि में और पिता को मृत्युमुख में निपतित किया उस दिन भी आपको उर्मिला याद न आई। उसकी क्या दशा थी, वह कहाँ पड़ी थी, सो कुछ भी आपने न सोचा, इतनी उपेक्षा! इस प्रकार हम देखते हैं कि आप की आलोचनात्मक शैली एक खास उद्देश्य को लेकर चलती है। गवेषणात्मक शैली में द्विवेदी जी की भाषा खोजती सी जान पड़ती है। उदाहरण—

"सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एक मात्र साहित्य है। जिस जाति विशेष में साहित्य का अभाव या उसकी न्यूनता देख पड़े, आप निस्संदेह निश्चित समझिये, कि वह जाति असभ्य किंवा अपूर्ण सभ्य है। जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है उसका साहित्य भी वैसा होता है। जातियों की क्षमता और सजीवता यदि कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है तो उसके साहित्य-रूपी आइने ही में मिल सकती है यह द्विवेदी जी की गवेषणात्मक शैली है, जो समझाने का भाव लिये हुए चलती है। इसमें गम्भीरता का पुट भी दृष्टिगोचर होता है।

व्यंगात्मक शैली में हँसी मजाक के साथ शैली में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण—

"इस म्यूनिसपैलटी के चेयरमैन (जिसे, अब लोग कुरसीमैन भी कहने लगे हैं) श्रीमान बूनाशाह हैं। बाप दादे की कमाई का लाखों रुपिया आपके घर भरा है। पढ़े लिखे आप रामनाम को हैं। चेयरमैन आप इसलिये हुए हैं कि अपनी कारगुज़ारी गवर्नमेंट को दिखाकर आप रायबहादुर बन जायँ और खुशामदियों से आठ पहर चौंसठ घड़ी घिरे रहें। म्युनिसपैलटी का काम चले चाहे न चले आपकी बला से..." इस स्थल में आपकी व्यंगात्मक शैली का अनुपम उदाहरण दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रकार हम द्विवेदी जी की रचनाओं में उपरोक्त तीन प्रकार की शैलियाँ पाते हैं। भिन्न-भिन्न स्थलों पर समयानुसार भिन्न-भिन्न शैली का प्रयोग रचना में चार चांद लगा देता है। भाषा में चटपटापन स्थिरता ओज तथा माधुर्य है। मुहावरों का प्रयोग भी द्विवेदी जी ने खूब किया है। द्विवेदी जी के दो लेख "कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता" तथा "दमयंती का चंद्रोपालंभ" बहुत ही उच्च-कोटि के बने हैं। इनमें लेखक का आत्म संदेश है।

इस प्रकार द्विवेदी जी अपने युग के हिन्दी निर्माता बन कर आये और अंत तक साहित्य की सेवा करते रहे। अब वे इस जगत में नहीं हैं फिर उनके लिखे, गये लेख ग्रन्थ, साहित्य की स्थायी एवं चिरस्मरणीय निधि है। उनके विचार हम लोगों के लिये वरदान हैं। इसलिये हिन्दी के उस काल का युग द्विवेदी युग है द्विवेदी तथा उस काल के लेखक हिन्दी साहित्य के गौरव स्तंम्भ हैं।

'पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय"

अयोध्यासिंह उपाध्याय हिन्दी के उन रत्नों में से थे जिन्होंने साहित्य के दोनों अंगों पर रचनायें की। आपका गद्य तथा पद्य दोनों

पर अधिकार था। उनका प्रिय प्रवास हिन्दी साहित्य की एक अच्छी रचना है।

पद्य पर उनका अधिक प्रभाव था, इस कारण उन्होंने जो कुछ भी गद्य में रचना की उस पर पद्य की भी छाप पड़ी। ऐसा ही हमें जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में भी मिलता है।

भाषा की कोमलता, उसका लचीलापन और प्रवाह पद्य की भाँति ही चला जो स्वाभाविक ही था।

उपाध्याय जी में सबसे बड़ी विशेषता उनकी भाषा की थी। उन्होंने अपनी पुस्तकों की रचना कठिन हिन्दी जिसे हम संस्कृत-मय कह सकते हैं और साथ साथ सरल भाषा में भी की। यह उनकी विशेषता थी।

उन्होंने जो कुछ भी लिखा, वह विचारने योग्य है। प्रवाह और भावना में बहकर उन्होंने जो लिखा वह हिन्दी साहित्य को एक देन है।

उनकी प्रथम पुस्तक "वेनिस का बाका" एक अनोखापन लेकर चली है। भाषा का प्रवाह उसकी अमूल्य निधि है। प्रथम पुस्तक होने के कारण उसके कुछ गद्यांश पद्य से लगते हैं, और फिर प्रभाव तो कवि होने ही का था। भाषा क्लिष्ट हो गयी है।

उन्होंने अपने जीवन में काफी गद्य लिखा, पर उनके निम्न ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है—

१. वेनिस का बांका

२. ठेठ हिन्दी का ठाठ

३. अधिखिला फूल

ठेठ हिन्दी का ठाठ और अधिखिला फूल में भी भाषा का प्रवाह सुन्दर है, और उसके साथ मुख्य बात यह है कि इनके शब्द 'वेनिस का बांका' के समान क्लिष्ट नहीं है। 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' पुस्तक में ठेठपन की वास्तव में हद है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपाध्याय जी ने अपने गद्य में दो भाषाओं का प्रयोग किया, एक क्लिष्ट और दूसरी सरल, पर ठेठ। दोनों में आप सफल भी हुए। इस प्रकार भाषा के उतार चढ़ाव में वास्तव में आपने विचित्रता दिखलायी।

संस्कृत-मिश्रित हिन्दी और सरल दोनों के रूप भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी उनमें कोई ऐसा विशेष दोष नहीं जो क्षम्य न हो।

कवि होने के नाते आपने जो कुछ भी गद्य लिखा वह कवि रूप में ही आया। गद्य की पंक्तियां काव्य रूप में प्रस्फुटित हुई। कल्पना और साहित्य के क्षेत्र में आप खूब उड़े और सफल भी हुए।

गद्य में काव्य की प्रतिध्वनि पर कुछ लोगों का विचार है कि उपाध्याय जी का गद्य-गठन भली भाँति नहीं हो पाया है। उसमें शिथिलता आ गयी है। पर इसके बारे में हमें इतना ही कहना है कि उपाध्याय जी का उद्देश्य साहित्य में कल्पना और सत्य का समिश्रण करना था, जो उन्होंने किया। इसी कारण लोगों के आक्षेपों की अपेक्षा भी यह निश्चित हो गया है कि उनके गद्य में एक मिठास थी, काव्य लोक की सुन्दरतम भावना थी, कल्पना का अभूतपूर्ण मिश्रण था जो कि हृदय में एक गुदगुदी भर देता है। गद्य में पद्य की भावना और भी अपने साथ कुछ लायी वह था रस, अलकारों का प्रयोग। यह भी प्रयोग आपने किया।

फिर भी आप में एक दोष था, वह पंडिताऊपन का। अन्य पूर्व व्यक्तियों की भाँति आपने भी कुछ शब्दों का प्रयोग किया है जोकि प्रवाह को शिथिल बनाने में सहायक होते हैं। जैसे 'करिके' 'होवे' आदि, कुछ लोगों के विचार में क्लिष्ट समझे जानेवाले शब्दों में आपने "अकर्मपटुता" "वृषभानु-नन्दिनी" "अपात्रता" "किंकर्तव्य-विमूढ़ता" "कालोपरांत" "असारता" "उन्नायक" आदि का प्रयोग किया है।

पर इसके विपरीत जब सरल और सुन्दर भाषा का प्रयोग आपने

किया तो उसमें एक अनोखापन आ गया, जो हृदय में एक हलचल मचा देता है।

अस्तु उपाध्याय जी की यह भाषा प्रथम भाषा से काफी बलशालिनी सिद्ध हुई और उसका प्रभाव भी साहित्य पर पड़ा। उनके बाद के उपन्यास इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

उनकी इसी प्रकार की शैली का एक उदाहरण !

"हम आसमान के तारे तोड़ना चाहते हैं, मगर काम आँख के तारे भी नहीं देते। हम पर लगाकर उड़ना चाहते हैं, मगर उठाने से पाँव भी नहीं उठते। हम पालिसी पर पालिश करके उसके रंग को छिपाना चाहते हैं, पर हमारी यह पालिसी हमारे बने हुए रंग को भी बदरंग कर देती है। हम राग अलापते हैं मेल-जोल का मगर न जाने कहाँ का खटराग पेट में भरा पड़ा है। हम जाति जाति को मिलाते चलते हैं, मगर ताव अछूतों से आँख मिलाने की भी नहीं। हम जातिहित की तानें सुनाने के लिए सामने आते हैं, मगर ताने दे दे कलेजा छलनी बना देते हैं। हम कुल हिन्दू जाति को एक रंग में रँगना चाहते हैं, मगर जाति जाति को अपनी ढफली और अपने अपने राग ने रही सही एकता को भी धता बता दिया है। हम चाहते हैं देश को उठाना, पर आप मुंह के बल गिर पड़ते हैं। हमें देश की दशा सुधारने की धुन है, पर आप सुधारने पर भी नहीं सुधरते। हम चाहते हैं जाति की असर निकालना, मगर हमारे जो की कसर निकाले भी नहीं निकलती। हम जाति को ऊँचे उठाना चाहते हैं, पर हमारी आँख ऊँची होती ही नहीं। हम चाहते हैं जाति को जिलाना, मगर हमें मर मिटना आता ही नहीं।"

इस गद्यांश में हम देखते हैं कि आपने तुलनात्मक भावना को लेकर लिखा। सीख, सत्य और उपदेश के साथ साथ इन पंक्तियों की भाषा भी मज़ेदार और ध्यान देने योग्य है। "पालिसी पर पालिश"

"खटराग" "छलनी बनादेता है" "मुँह के बल" "कसर" धता, ताव आदि शब्द उल्लेखनीय हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपाध्याय जी की यह शैली बड़े महत्त्व की रही, और इसका यथेष्ट मान भी रहा क्योंकि इसमें एक अनोखापन था, जिसके द्वारा पाठक का ध्यान स्वयं उस ओर आकर्षित हो जाता है ।

अस्तु उपाध्यायजी की हिन्दी सेवा भुलाई नहीं जा सकती । गद्य और पद्य दोनों में जो कुछ आपने लिखा वह हिन्दी की निधि है ।

"बाबू श्यामसुंदर दास"

बाबू श्यामसुंदर दास का हिन्दी साहित्य में आगमन एक महत्त्वपूर्ण घटना है । आपने जो कुछ भी किया, वह हिन्दी के लिए किया, हिन्दी के लिये वह जिये और हिन्दी के लिये मरे ।

आपने हिन्दी साहित्य को बहुत कुछ दिया । संकलन, स्वलिखित ग्रन्थ तथा विचार विनमय से ओतप्रोत लेख ।

आपने यदि अपने साहित्यक जीवन में किसी का अनुकरण किया तो वह थे महावीर प्रसाद द्विवेदी । शब्द चयन और भाषा का प्रयोग दोनों में बहुत कुछ मिलता जुलता है ।

सरल शब्दों का प्रयोग, विदेशी शब्दों का अपनाना, आप की एक विशेषता थी । और यह आवश्यक भी था । जिन विषयों पर आपने लिखा, वह साधारणतय: जनता तथा पाठकों की दृष्टि में नवीन थे । यदि ऐसे समय में आप क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग करते, उनको महत्त्व देते तो सम्भव था कि आपके ग्रन्थ पाठकों के मष्तिष्क में भलीभांति जम न पाते ।

काव्य मीमांसा अथवा साहित्यालोचन इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ।

आपने एक खोज की, वह थी साहित्य पर । उस पर बहुत

अध्ययन करने के उपरांत आपने लेखों में अपने विचारों को प्रकट किया। "भारतीय साहित्य की विशेषतायें" उनका अमूल्य लेख है।

भाषा में उदार होने के कारण आपके ग्रन्थों में उर्दू भाषा के बहुत से शब्द दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे "तूफान" "दिल" "ख़ूब" "काफ़ी" "क़ैद" आदि।

भाषा के उतार चढ़ाव में आप बहुत सिद्धहस्त थे। आपकी भाषा भिन्न भिन्न स्थलों पर भिन्न २ प्रकार की है। भाषा और शब्दों के बारे में आपका विचार था कि हमें विदेशी शब्दों को लेना चाहिये, पर उसे अपने ढंग में रंग देना चाहिये जिससे वह अपनी ही भाषा के शब्द ज्ञात हों।

नागरी प्रचारिणी सभा के सर्वेसर्वा आपही थे। आपने हिन्दी के उत्थान के लिये एक नया द्वार खोला। उसके द्वारा आज भी हिंदी साहित्य की सेवा होती आ रही है। नागरी प्रचारिणी सभा का हिंदी प्रसार आन्दोलन चिरस्मरणीय है और रहेगा।

श्यामसुंदर दास जी ने जो कुछ भी लिखा वह तौलकर लिखा। तुलनात्मक भावना उनमें भी वेग से थी। पश्चिम साहित्य का इतिहास और उसकी विशेषतायें पूर्व से उनकी तुलना और अंत में निष्कर्ष, निकाल कर रख देना।

आपने इतिहास पर भी लिखा। हिन्दी साहित्य का इतिहास, खोजपूर्ण लेख, कवियों की प्रवृत्तियाँ आपके लिखने की विशेष पूंजी थी।

आपके लेखन-कला आपका पर एक विचार और था, वह यह कि जो विषय क्लिष्ट हो, जिसके समझने में कठिनाई हो, उसको साधारण पाठकों तक पहुँचाने के लिये ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिये जो सरल और प्रभावशालनी हो।

आपके गद्य का एक उदाहरण:—

"भारत की शस्य श्यामला भूमि में जो निसर्ग सिद्ध सुषमा है,

उससे भारतीय कवियो का चिरकाल से अनुराग रहा है। यों तो प्रकृति की साधारण वस्तुयें भी मनुष्य-मात्र के लिये आकर्षक होती हैं, परंतु उसकी सुदरतम विभूतियों में मानववृत्तियाँ विशेष प्रकार से रमती हैं। अरब के कवि मरुस्थल में बहते हुए किसी साधारण से झरने अथवा ताड़ के लंबे लंबे पेड़ों में ही सौन्दर्य का अनुभव कर लेते हैं, तथा ऊँटों की चाल में ही सुंदरता की कल्पना करलेते हैं, परंतु जिन्होंने भारत की हिमाच्छादित शैलमाला पर संध्या की सुनहली किरणों की सुषमा देखी है, अथवा जिन्हें घनी अमराइयों की छाया में कल-कल ध्वनि से बहती हुई निर्झरिणी तथा उसकी समीपवर्तिनी लताओं की वसंत श्री देखने का अवसर मिला है, साथ ही जो यहाँ के विशालकाय हाथियों की मतवाली चाल देख चुके हैं उन्हें अरब की उपर्युक्त वस्तुओं में सौंदर्य तो क्या, हाँ उल्टे नीरसता, शुष्कता और भद्दापन ही मिलेगा। भारतीय कवियों को प्रकृति के सुन्दर गोद में क्रीड़ा करने का सौभाग्य प्राप्त है, वे हरे भरे उपवनों में तथा सुन्दर जलाशयों के तटों पर विचरण करते तथा प्रकृति के नाना मनोहर रूपों से परिचित होते हैं। यही कारण है कि भारतीय कवि प्रकृति के संश्लिष्ट तथा सजीव चित्र जितनी मार्मिकता, उत्तमता तथा अधिकता से अंकित कर सकते हैं, तथा उपमा-उत्प्रेक्षाओं के लिये जैसी सुन्दर वस्तुओं का उपयोग कर सकते हैं, वैसा रूखे सूखे देशों के निवासी कवि नहीं कर सकते। यह भारत भूमि की विशेषता है कि यहाँ के कवियों का प्रकृति वर्णन तथा तत्संभव सौन्दर्य-ज्ञान उच्चकोटि का होता है।"

इस गद्यांश में हम देखते हैं कि भाषा का उतार चढ़ाव बहुत ही सफलता पूर्वक निभाया गया है। भाषा बदली दिखायी देती है। भारतीय गौरव, उसकी सुन्दरता में प्रस्फुटित होता है। प्राकृतिक दृश्य कवियों के काव्य में कहाँ तक सहायक होते हैं यह इसमें दिखलाया गया है।

इसी प्रकार वह साहित्य के प्रति अपने विचारों को प्रकट करते हुए कहते हैं :—

"साहित्य के कला-पक्ष की अन्य महत्वपूर्ण जातीय विशेषताओं से परिचित होने के लिये हमें उसके शब्द समुदाय पर ध्यान देना पड़ेगा, साथ ही भारतीय संगीत शास्त्र की कुछ साधारण बातें भी जाननी लेनी होगी। वाक्य रचना के विविध भेदों, शब्द, गत तथा अर्थगत अलंकारों और अक्षर-मात्रिक अथवा लघु-गुरु मात्रिक आदि छंद समुदायों का विवेचना भी उपयोगी हो सकता है परन्तु एक तो ये विषय इतने विस्तृत हैं कि इन पर यहाँ विचार करना सम्भव नहीं और दूसरे उन का सम्बन्ध साहित्य के इतिहास में उतना पृथक नहीं है जितना व्याकरण, अलंकार और पिंगल से है। तीसरी बात यह भी है कि इनमें जातीय विशेषताओं की कोई स्पष्ट छाप भी नहीं देख पड़ती, क्योंकि ये सब बातें थोड़े-बहुत अन्तर से प्रत्येक देश के साहित्य में पायी जाती हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्याम सुन्दर दास जी का उद्देश्य एक खोज था, साहित्य की खोज, उसकी तुलना आपने ही प्रथम भारतीय और पाश्चात्य साहित्य को एक कसौटी पर परखा। और बाद में अपने विचारों को हिन्दी संसार के सम्मुख रक्खा।

भारतीय साहित्य के गौरव का वर्णन करते हुए आपने अपने इसी लेख में (भारतीय साहित्य की विशेषतायें) लिखा।

"समस्त भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है उसकी यह विशेषता इतनी प्रमुख तथा मार्मिक है कि केवल इसी के बल पर संसार के अन्य साहित्यों के सामने वह अपनी मौलिकता की पताका फहरा सकती है और अपने स्वतन्त्र, अस्तित्व की सार्थकता प्रमाणित कर सकती है।

साहित्यिकसमन्वय से हमारा तात्पर्य साहित्य में प्रदर्शित सुख—दुख, उत्थान-पतन, हर्ष—विषाद, आदि विरोधी तथा विपरीत भावों के समीकरण तथा एक अलौकिक आनन्द में उसके विलीन होने से है।"

श्याम सुन्दर दास जी ने इसी भाँति और भी साहित्य विषयक कई लेख लिखे । साहित्यालोचन तो हिन्दी साहित्य को एक देन है । साहित्यालोचन के कुछ भाग योरोपियन ग्रन्थों के अनुवाद भी कहे जाते हैं।

आप की हिन्दी सेवा हिन्दी को नवीन विचारों, खोजों और दृष्टि-कोणों से भर गयी है जिसने कि उसे नवीन दिशा की ओर मोड़ दिया है। आप की हिन्दीसेवा सराहनीय है जो आप के नाम को चमकाती रहेगी।

"रामचन्द्र शुक्ल"

रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी गद्य के विभिन्न अंगों पर रचनायें की जो काफी प्रसिद्ध भी हैं। आप एक आलोचक निबन्ध लेखक और साहित्य-मर्मज्ञ के नामों से पुकारे जाते हैं।

शुक्ल जी ने अपने जीवन काल में बहुत कुछ लिखा और जो लिखा उसका अधिकांश भाग उत्कृष्ट है। शुक्ल जी के निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं :—

१—चिन्ता मणि (निबन्ध)
२—शिशिर-पथिक (काव्य)
३—हिन्दी साहित्य का इतिहास

चिन्तामणि पुस्तक में आपने छोटे छोटे लेखों का संग्रह किया है जो विचारात्मक कहे जा सकते हैं। इस में आपने 'क्रोध' 'ईर्ष्या' 'क्षोभ' आदि विषयों पर विचार प्रकट किया है।

शुक्ल जी के लिखने का ढंग निराला था। भाषा में प्रवाह होने के साथ साथ गम्भीरता भी थी। आप के वाक्य बहुत बड़े भी होते थे। शैली और शब्द चयन पर भी आपने ध्यान दिया है।

शुक्ल जी का उद्देश्य था, साहित्य के प्रत्येक अंग को मनन करना और उस पर विचार कर उसे जनता के सम्मुख प्रकट करना। इस उद्देश्य में आप सफल भी हुए हैं।

भिन्न-भिन्न स्थलों पर आपकी शैली भी भिन्न-भिन्न हो गयी। आप अपनी रचनाओं में व्यर्थ के शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे। यह उनके लिये ठीक भी था। कहावतों और मुहावरों का प्रयोग तो आपने बहुत ही कम किया।

जब आप किसी गम्भीर बात को लिखते थे तो ऐसा ज्ञात होता है कि मानो उपदेश दे रहे हों, या अपनी विद्वता का परिचय। जैसे—

"धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है, हम कहीं कह चुके हैं। धर्म है ब्रह्म के सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति, जिसकी असीमता का आभास अखिल-विश्व की स्थिति में मिलता है। इस प्रवृत्ति का साक्षात्कार परिवार और समाज ऐसे छोटे क्षेत्रों से लेकर समस्त भू-मंडल और अखिल विश्व तक के बीच किया जा सकता है। परिवार और समाज की रक्षा में लोक के परिचालन में और समष्टि रूप में अखिल विश्व की शाश्वत, स्थिति में सत् की इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

ध्यान देने की बात यह है कि सत्स्वरूप की इस प्रवृत्ति का साक्षात्कार जितने ही विस्तृत क्षेत्र के बीच हम करते हैं, भगवत्स्वरूप की ओर उतनी ही बढ़ी हुई भावना हमें प्राप्त होती है। कुल विशेष के भीतर ही जो इस प्रवृत्ति का अनुभव करेंगे उनकी भावना कुल-नायक या कुल-देवता तक ही पहुँचेगी, किसी जाति या देश के नेता अथवा उपास्य देवता तक पहुँच कर रह जायगी।"

इसमें हम उनकी भावना का दर्शन प्राप्त करते हैं। भाषा तो ऊँची है ही, उसके साथ-साथ विद्वता का परिचय भी समुचित मात्रा में मिलता है। ऐसे स्थल हमें "मानस की धर्म-भूमि" में स्थान-स्थान पर मिल जावेंगे।

इसी के साथ साथ जब वह कुछ अपनी शैली को मज़ाक के साथ ले चलने का प्रयत्न करते हैं, तब उनकी भाषा का प्रवाह कुछ सीमा तक बदल जाता है। जैसे—

"स्वाभाविक सहृदयता केवल अद्भुत, अनूठी, चमत्कार-पूर्ण

विशद या असाधारण वस्तुओं पर मुग्ध होने में नहीं है। केवल असाधारणत्व के साक्षात्कार की यह रुचि स्थूल और भद्दी है, और हृदय के गहरे तलों से संबंध नहीं रखती। जिस रुचि से प्रेरित होकर लोग आतशबाज़ी, जलूस आदि देखने दौड़ते हैं, यह वही रुचि है। काव्य में इसी असाधारणत्व और चमत्कार की ओछी रुचि के कारण बहुत से लोग अतिशयोक्ति-पूर्ण अशक्त वाक्यों में ही काव्यत्व समझने लगे। कोई बिहारी के विरह-वर्णन पर सर हिलाता है, कोई 'यार' की कमर ग़ायब होने पर वाह वाह करता है। पर मुबालग़ा जहाँ हद से ज्यादा बढ़ा कि मज़ाक हुआ। भावों का उत्कर्ष दिखाने के लिये काव्य में कहीं-कहीं असाधारणत्व अवश्य अपेक्षित होता है, पर उतनी ही मात्रा में, जितनी से प्रकृत भाव दबने न पावे।"

इस स्थल में विषय तो गम्भीर था, पर शुक्ल जी का लिखने का ढंग दूसरा था। "यार" "सर हिलाना" "वाह वाह" "मुबालग़ा" "हद" "ज्यादा" आदि शब्द इस बात के परिचायक हैं।

इसके साथ जब शुक्ल जी विचारों के प्रवाह में बहकर लिखते थे तो वह उत्कृष्ट ही नहीं वरन् प्रभावशाली भी होता था, उसमें कोई सन्देह नहीं। जैसे—

"......वर्तमान सभ्यता ने जहाँ अपना दखल नहीं जमाया है, उन जंगलों, पहाड़ों, गाँवों और मैदानों में हम अपने को वाल्मीकि, कालीदास या भवभूति के समय में खड़ा कल्पित कर सकते हैं; कोई बाधक दृश्य सामने नहीं आता। पर्वतों की दरी-कंदराओं में, प्रभात के प्रफुल्ल पद्म-जाल में, छिटकी चाँदनी में, खिली कुमुदिनी में हमारी आँखें कालिदास, भवभूति आदि की आँखों से जा मिलती हैं। पलाश, इंगुदी, अंकोर के वनों में अब भी खड़े हैं, सरोवर में कमल अब भी खिलते हैं, तालाबों में कुमुदिनी अब भी चाँदनी के साथ हँसती हैं, बनीर शाखायें अब भी झुक-झुक कर तीर का नीर चूमती हैं; पर हमारी आँखें उनकी ओर भूलकर भी नहीं जातीं; हमारे हृदय से मानों उनका कोई लगाव

ही नहीं रह गया है। अग्निमित्र, विक्रमादित्य आदि को अब हम नहीं देख सकते..........

बिजली से जगमगाते हुए अँगरेजी ढंग के शहरों में धुआँ उगलती हुई मिलों और ह्वाइट वे लेडला की दूकान के सामने, हम कालिदास आदि से अपने को बहुत दूर पाते हैं। पर प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में हमारा उनका भेद-भाव मिट जाता है, हम सामान्य परिस्थिति के साक्षात्कार द्वारा चिर-काल-व्यापी शुद्ध 'मनुष्यत्व' का अनुभव करते हैं, किसी विशेष-काल-बद्ध मनुष्यत्व का नहीं।"

ऊपर के गद्यांश में वास्तव में एक विचार है, जो हृदय को प्रभावित करता है।

इन सब शैलियों और शब्दों के प्रयोग के अतिरिक्त भी शुक्ल जी ने अन्य ढंग से लिखने का प्रयत्न किया। ऐसे समय में वह अपने गद्य को रोचक बनाने के लिये ढूँढ़ ढूँढ़ कर शब्दों का प्रयोग करते थे। जैसे:—

"हवा से लड़नेवाली स्त्रियाँ देखी नहीं तो कम से कम सुनी तो बहुतों ने होगी चाहे उनकी जिंदः-दिली की क़द्र न की हो"
"........कुछ दिन पीछे इन्हें उर्दू लिखने का शौक़ हुआ—उर्दू भी ऐसी वैसी नहीं उर्दू ए-मुअल्ला.......।"

या जब किसी पर व्यंग करना होता था, तो शैली बदल जाती थी जैसे:—

"........हरि-कर राजत माखन रोटी', बस इतनी ही-सी तो बात है, उस पर—

मनो बारिज ससि बैर जानि जिय गह्यो सुधांशुहि धोटी,
मनो वराह भूधर-सह धरी दसनन की कोटी।

एक छोटी-सी रोटी की हक़ीक़त ही कितनी, उस पर पहाड़ के सहित जमीन का बोझ लाकर रख दिया। उपमा यदि न मिलीं, तो बस, 'शेष, शारदा' पर फिरे, उनकी इज्जत लेने पर उतारु।"

बस मुख्यतयः आपने उपयुक्त शैलियों तथा शब्दों का प्रयोग किया।

हिन्दी साहित्य का इतिहास जो लगभग ७०० पन्नों का है, वह ध्यान देने योग्य है।

इतनी सब विशेषताएँ तथा ज्ञान होते हुए भी शुक्ल जी में एक बड़ा भारी दोष था। वह यह कि वे अपनी तो सब कह जाते थे, पर दूसरे की सुनते भी नहीं, थे या अपनी राय को वह सर्वसिद्ध कराने का प्रयत्न करते थे। छायावाद पर उनके विचार इस बात के प्रमाण हैं।

इसके अतिरिक्त उनको लिखने की धुन अधिक थी, इस कारण उन्होंने अपनी कुछ पुस्तकों में दूसरे लेखकों की पंक्तियाँ भी निसंकोच अपना लीं। हो सकता है यह उनका निजी दृष्टिकोण हो। हिन्दी साहित्य का इतिहास नाम के ग्रन्थ में आप को ऐसे स्थल कई मिल जायेंगे। हिन्दी साहित्य का इतिहास को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने पर प्रकट होगा कि उनका यह ग्रन्थ साहित्य का इतिहास न होकर उसके विविध विषयों का इतिहास मात्र है।

इतना सब होते हुए भी शुक्ल जी की हिन्दी सेवा सराहनीय है। आपने हिन्दी साहित्य को बहुत कुछ दिया, जिसके कारण हिन्दी संसार आप का ऋणी रहेगा। निबन्ध आलोचना, और इतिहास इन तीन अंगों पर आपने बहुत कार्य किया और खोज भी की। इसके अतिरिक्त काव्य पर भी आप का अधिकार था।

शुक्ल जी हिन्दी की उन्नति के लिये पैदा हुए, उसकी उन्नति करते हुए ही मरे, पर यदि वह अपने क्षेत्रों में तथा लिखने में और अधिक उदार और कटुता से रिक्त होते तो आज उनका नाम पहिले से कहीं ऊँचा होता।

"बाबू जयशङ्कर प्रसाद"

हिन्दी साहित्य के महान कलाकार स्वर्गीय जयशङ्कर प्रसाद ने जो

हिन्दी को दिया वह उसकी अमूल्य निधि है। आपने साहित्य के प्रत्येक अंग पर रचना की और प्रत्येक क्षेत्र में आप को आशातीत सफलता भी मिली। नाटक, उपन्यास, कविता, कहानी, निबन्ध जो कुछ भी आपने लिखा वह उत्कृष्ट था।

आप के नीचे लिखे हुए ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

नाटक :—

१. स्कन्दगुप्त
२. अजात शत्रु
३. चन्द्रगुप्त
४. जनमेजय का नाग यज्ञ
५. विशाख।

इसके अतिरिक्त आपने निम्न नाटक और लिखे।

६. राज्यश्री
७. एक घूंट
८. कामना
९. ध्रुव स्वामनी

उपन्यास में :—

१. कंकाल और।
२. तितली दोनों ही प्रसिद्ध हैं।

काव्य में :—

१. कामायनी
२. आँसू
३. लहर
४. झरना हैं।

कहानी संग्रह में :—

१. आकाश दीप
२. इन्द्रजाल

३. प्रतिध्वनि

आँधी में भी कुछ उच्चकोटि की कहानियाँ हैं।

काव्य और कला पर भी आपने एक ग्रन्थ लिखा।

अपने जीवन में उन्होंने दो दर्जन से ऊपर पुस्तकों की रचनायें की जो अपना पृथक पृथक दृष्टिकोण लेकर चली हैं।

आप आधुनिक युग के नाट्य-निर्माता माने जाते हैं। आपके ही प्रभाव और परिश्रम से नाटक का प्रसार पुनः प्रारम्भ हुआ। पाठकों की रुचि पुनः नाटकों की ओर बढ़ी।

प्रसाद जी ने लिखने के पूर्व अपने सम्मुख एक उद्देश्य रक्खा था, वह था प्राचीन संस्कृत और सभ्यता का प्रदर्शन और उसका उचित मूल्यांकन। इसी कारण उनका प्रायः प्रत्येक नाटक इसी उधेड़ बुन को लेकर चला है।

इसी कारण आपके नाटकों में दार्शनिक भावना भी प्रचुर रूप में दिखलाई पड़ती है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी उसमें पग पग पर मिलता है।

प्रसादजी के ग्रन्थों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि वे आदर्शवादी थे और उनका आदर्शवाद मानवता में निहित था। मानवता का उत्थान उनका परम लक्ष्य था, जो उनके प्रत्येक ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होता है। बहुत से स्थानों पर क्षमाशीलता का अत्यधिक प्रयोग भी हुआ है।

भाषा के संबन्ध में आपके विचार काफी कठोर थे। शुद्ध संस्कृत-मय भाषा के शब्दों का प्रयोग आप निसंकोच करते थे। यहाँ तक कि नाटकों में विदेशी पात्रों से भी आपने शुद्ध हिन्दी में वार्त्तालाप करवाया है, जो एक सीमा तक नाटकीय ढंग से अनुचित है।

नाटकों में अपने विचारों का प्रतिपादन उनका परम लक्ष्य रहा है, जो कि स्थान स्थान पर दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि मानवता-वादी हमेशा मनुष्यता के स्वप्न देखा करता है।

नीचे के कुछ उदाहरण प्रसादजी के नाटकों में से जो उनके विचारों को प्रकट करते हैं:—

"माँ, क्या कठोर और क्रूर हाथों से भी राज्य सुशासित होता है!.........बच्चों का हृदय कोमल थाल है, चाहे इसमें कटीली झाड़ी लगा दो, चाहे फूलों के पौधे।"

"छलना—"इसे अहिंसा सिखाती है, जो भिक्षुओं की भद्दी सीख है? जो राजा होगा जिसे शासन करना होगा, उसे भिखमंगों का पाठ नहीं पढ़ाया जाता। राजा का परम धर्म न्याय है, वह दंड के आधार पर है। क्या तुझे नहीं मालुम वह भी हिंसामूलक है।"

"मेरी समझ में तो मनुष्य होना राजा होने से अच्छा है।"
".........मनुष्य व्यर्थ महत्त्व की आकांक्षा में मरता है; अपनी नीची, किन्तु सुदृढ़ परिस्थिति में उसे संतोष नहीं होता; नीचे से ऊँचे चढ़ना ही चाहता है, चाहे फिर गिरे तो भी क्या" (दार्शनिकता)

"जीवक—"संघ भेद करके आपने नियम तोड़ा है, उसी तरह राष्ट्र भेद करके क्या देश का नाश कराना चाहते हैं।

"कोशल के प्रचंड नाम से ही शान्ति स्वयं पहरा दे रही है।...... विदेशी बर्बर शताब्दियों तक उधर देखने का भी साहस नहीं करेंगे।

"......पुरुषार्थ करो। इस पृथ्वी पर जियो तो कुछ होकर जियो, नहीं तो मेरे दूध का अपमान कराने का तुम्हें अधिकार नहीं।"

"वासवी ......नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्‌गम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है, तो पुरुषार्थ का ढोंग क्यों करती। रो मत बहन! मैं जाती हूँ, तू यही समझ की कुणीक ननिहाल गया है।"

इसी प्रकार जब उत्सुकता और चिन्ता रहती है, तो प्रसाद जी का चित्रण और हृदयग्राही हो जाता है।

शर्वनाग (टहलता हुआ) "कौन सी वस्तु देखी? किस सौंदर्य पर मन रीझा? कुछ नहीं, सदैव सुन्दरी खड्गलता की प्रभा पर मैं

मुग्ध रहा। मैं नहीं जानता कि और भी कुछ सुन्दर है, और भय से तो मेरा परिचय नहीं। परन्तु हाँ वह मेरी स्त्री जिसके अभावों का कोष कभी खाली नहीं, जिसकी भर्त्सनाओं का भन्डार अक्षय है, उससे मेरी अंतरात्मा काँप उठती है। आज मेरा पहरा है। घर से जान छुटी, परन्तु रात बड़ी भयानक है। चलूँ अपने स्थान पर बैठूँ...।

वीर भावना के समय के यह शब्द:—

"भर्टाक:—"जाय, सब जाय; गुप्त साम्राज्य, हीरों के-से उज्ज्वल-हृदय वीर-युवकों का शुद्ध रक्त, सब मेरी प्रतिहिंसा-राक्षसी के लिये बलि हों।"

प्रसादजी ने अपने सब नाटको में अंत में मानवतावाद की विजय दिखाई है।

कहानी क्षेत्र में भी आपका नवीन दृष्टिकोण रहा है। भाषा का घुमाव फिराव और कथा के विचार कुछ ऐसे चले हैं जो सर्व-साधारण की समझ के बाहर हैं।

प्रसादजी की सबसे उत्तम कहानी 'आकाश-दीप' है। चम्पा का चरित्रचित्रण अपूर्व हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य अच्छी कहानियों में "बनजारा" "पुरुष्कार" "हिमालय का पथिक" "ममता" "इन्द्रजाल" "चित्रवाले पत्थर" "प्रतिध्वनि मुख्य हैं।

इनकी भी रचना एक अनोखे ढंग से हुई है। कहानियों के अंत भी रोचक और अपने ढंग के निराले हैं। बुद्ध गुप्त का (आकाश दीप) कहानी के अंत में चला जाना हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ जाता है। हिमालय का पथिक में पुरुष और नारी का चित्रण मनोवैज्ञानिक तथा तथ्यपूर्ण घटना पर है। वर्णन पर और घटनायें, विकास और अंत सब क्रम से हुए हैं। कौतूहल उत्पन्न कर गुत्थी को सुलझाना प्रसाद जी की एक बड़ी विशेषता थी। कुछ कहानी के गद्यांश निम्नलिखित हैं:—

"धीरे धीरे रात खिसक चली, प्रभात के फूलों से तारे चू पड़ना चाहते थे। विन्ध्य की शैलमाला में गिर पथ पर एक झुंड बैलों का बोझ लादे चला आता था। साथ के बनजारे उनके गले की घंटियों के मधुर स्वर में अपने ग्राम-गीतों का आलाप मिला रहे थे। शरद् ऋतु की ठंड से भरा हुआ पवन उस दीर्घ पथ पर किसी को खोजता हुआ दौड़ रहा था।" (बनजारा)

"ममता विधवा थी। उसका यौवन शोण के समान ही चंचल था।" (ममता)

"..... शस्त्र कहाँ हैं ? तुम्हारा नाम"

"चम्पा"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"जाह्नवी के तट पर, चम्पा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ...."

"अच्छा, जो उस दिन तुमने गड़ेरियेवाली कहानी सुनायी थी, जिसमें आसफुद्दौला ने उसकी लड़की का आँचल भुने हुए भुट्टे के दानों के बदले मोतियों से भर दिया था, वह क्या सच है ?" (मधुआ)

कहानी के विचार कहानी तक ही सीमित रहे। लेख और निबंध लिखते समय प्रसाद जी अत्यधिक गम्भीर हो गये हैं जिसके द्वारा उनकी वास्तविक विद्वत्ता का पता चलता है:—

"उसके बाद आता है पौराणिक प्राचीन गाथाओं का साम्प्रदायिक उपयोगिता के आधार पर संग्रह। चारों ओर मिलाकर देखने पर यह भी बुद्धिवाद का, मनुष्य की स्व-निर्भरता का, उसके गर्व का प्रदर्शन ही रह जाता है।

मानव के सुख-दुख की गाथायें गायी गयीं। उनका केन्द्र होता था, धीरोदात्त, विख्यात, लोक-विश्रुत नायक। महाकाव्यों में महत्ता की अत्यन्त आवश्यकता है। महत्ता ही महाकाव्य का प्राण है।"

इसमें प्रसाद जी की साहित्यिक गम्भीरता दृष्टिगोचर होती है। आप ऐसे साहित्यिक निबन्ध को सोच विचार कर लिखते थे।

इस प्रकार प्रसाद जी ने जो कुछ भी लिखा बहुत सुन्दर लिखा। पर कंकाल उपन्यास के बारे में हमें कहना है कि वह उत्कृष्ट होते हुए भी प्रभावशाली नहीं सिद्ध हुआ, उसका अंत हमारे दृष्टिकोण से ठीक नहीं है।

हम देखते हैं कि प्रसाद जी की रचनाओं में साहित्यिक उत्कृष्टता है, आध्यात्मिकता एवं ऐतिहासिक खोज है, नवीनता और दार्शनिकता है, मानसिक द्वन्द और आदर्शात्मिक भावना है, इसी कारण उनका नाम हिन्दी साहित्य में स्वर्ण अक्षरों से लिखे जाने के योग्य है। यही कारण है कि आज का कोई उपन्यासकार उनके अधूरे उपन्यास "इरावती" को पूरा न कर सका।

"मिश्र बन्धु"

मिश्र बन्धु में चार सज्जनों के नाम आते हैं, अर्थात् पण्डित गणेश बिहारी मिश्र, रावराजा डा० श्यामबिहारी मिश्र, रायबहादुर पण्डित शुकदेव बिहारी मिश्र और पण्डित प्रताप नारायण मिश्र। पहिले तीनों सज्जन भ्राता थे और चतुर्थ प्रथम मिश्र बन्धु के पुत्र हैं। तृतीय व्यक्ति इस ग्रन्थ के लेखक भी हैं, इस कारण उनका वर्णन यहाँ न लिखना कुछ उचित सा है। किन्तु ऐसा करने से चारों मिश्र बन्धुओं के कार्य छुट जायेंगे। इसलिये थोड़े में इनका विवरण दिया जाता है।

प्रथम तीन बन्धुओं ने "मिश्र बन्धु विनोद" और "हिन्दी नवरत्न" प्रधान ग्रन्थ लिखे, तथा "सूर सुधा" "देव सुधा" और "बिहारी सुधा" तीन संग्रह भी बनाये। तृतीय और चतुर्थ व्यक्तियां ने "साहित्य पारिजात" और "कविकुल कंठाभरण" की टीका रची तथा "स्वतंत्र-भारत" "चंद्रगुप्त विक्रमादित्य" उपन्यास बनाया। द्वितीय और तृतीय व्यक्तियों ने तीस, पैंतिस गद्य ग्रन्थ विविध विषयों पर बनाये, जिन में साहित्यिक दृष्टि से बुद्ध पूर्व का भारतीय इतिहास तथा छै नाटक एवं इतने ही उपन्यास प्रधान हैं। तृतीय व्यक्ति ने अकेले "उदयन" उपन्यास और "आत्मानुभव" लिखे। द्वितीय और तृतीय ने "हिन्दूधर्म"

नामक एक ग्रन्थ और लिखा जो अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है। आप सज्जनों ने साहित्यिक इतिहास तथा समालोचना पर विशेष श्रम किया।

भारतीय इतिहास तथा नाटकों एवं उपन्यासों द्वारा आपने प्राचीन काल से वर्तमान समय तक भारतीय सभ्यता का सजीव चित्र पाठकों के सामने रक्खा है।

उपन्यासों में 'सम्राट उदयन' पाँचवीं शती, वीशीमें, "चन्द्रगुप्त मौर्य" चौथी में, "पुष्यमित्र" दूसरी में, "विक्रमादित्य" पहली में "चंद्रगुप्त विक्रमादित्य" चौथी शती ईसवी में तथा वीर मणि १३हवीं शती ईसवी में हुए हैं, उन्हीं का वर्णन उपर्युक्त ग्रन्थों में है। नाटकों में "रामचरित्र" १३वीं शती वीशी का चरित्र खींचता है। "पूर्ण भारत" और "उत्तर भारत" दशवीं शती वीशी का, ईशान वर्मन" छठी शती इसवी का "शिवाजी" सत्रहवीं शती इसवी का तथा "नेत्रोन्मोलन" वर्तमान समय का है।

इन सब उपन्यासों और नाटकों में अपने अपने समयों के शुद्ध ऐतिहासिक चित्र दिये गये हैं।

मिश्र बन्धु ने प्राय: १०० पृष्ठों में ब्रज-भाषा, अवधी तथा खड़ी बोली की पद्यात्मक रचनायें भी की हैं, जिनका वर्णन यहाँ अप्रसंगिक है।

आप का मुख्य ध्येय हिन्दी साहित्य के इतिहास तथा समालोचना अथच भारतीय सभ्यता के ऐतिहासिक चित्र का
यथावत् प्रदर्शन रहा है।

आप लोगों ने आदिमकाल में गम्भीर विषयों पर विशेष प्रयत्न किया है तथा पीछे से नाटकों और उपन्यासों पर।

आपके उपन्यास "सम्राट विक्रमादित्य" के एक गद्य का उदाहरण जो आप लोगों की भाषा और शैली को प्रकट करता है: —

"प्रधान चाकर:—दीनबन्धु चित्र अभी कल ही तो आया है। ऐसा रूप है कि चित्र की सत्यता पर विश्वास नहीं होता।

युवराजः—(चित्र देखकर) वाह ऐसा रूप तो संसार में देखा गया नहीं। नख से शिखा-पर्यंत कहीं कोई दोष ही नहीं। यह चित्र अवश्य काल्पनिक होगा। ऐसा सौंदर्य वास्तविक कैसे हो सकता है ? न तो मोटापन दिखता है न दुबलापन। रग ऐसा अनमोल है कि सोना, चंदन और केसरि भी सामना नहीं कर पाते। आँखे कैसी बड़ी-बड़ी चित्त को चुराती हैं ? मुख का सौंदय उनसे और भी चतुर्गुणित हो गया है। बदन पर का मौक्तिक अधरों को कैसी शोभा दे रहा है। मंद मुसक्यान से जो थोड़ा-सा दाँत खुल गए हैं, उनसे सौंदर्य में मुक्ता होड़ नहीं लगा पाता। जितनी अनमोल शोभा अधरों को मुक्ता से मिलती है, उससे कहीं अधिक लघु दंतावलि से। नासिका की मंद श्वास से मोती को जो थोड़ा-सा कंपन मिलता है, उसका भी प्रभाव मुक्ता और अधर पर उसकी छाया में दर्शाया गया है। भौंहे नेत्रों के ऊपर ऐसी शोभित हैं, मानो जगत जीतने को कामदेव ने धनुष ताना हो। उन्नत ललाट-पटल दूर तक ज्योति फैलाता है। काले बालों पर रत्न-जाल की अनमोल शोभा है, जिसके नीचे वेणी ऐसी लहराती है, मानो अंधकारपूर्ण रात्रि में रूप का प्रतिद्वंदी खोजने आकाश की ओर जाने को नागनी उछल कूद मचाये हो। स्तनांशुक के भीतर से भी अंग की आभा नेत्रों को चुराती है। अंशुक पर वैजयंतिका क्या ही लहरा रही है ? सारा चित्र रूप का कोष-सा सम्मुख उँडेलता है।"

"मुंशी प्रेमचन्द्र"

प्रेमचंद जी हमारे उपन्यासकारों में सर्व श्रेष्ठ समझे जाते हैं। आप हिन्दी के लिये पैदा हुए थे। इसी कारण वर्षों तक उर्दू में लिखते रहे, और उनके पश्चात हिन्दी क्षेत्र में आये। उपन्यास लेखक के साथ साथ आप कुशल कहानी लेखक भी थे।

आपके नीचे लिखे हुए ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं:—

उपन्यास में:—

१. रंगभूमि (दो भाग)
२. गोदान
३. गबन
४. प्रेमाश्रम
५. सेवासदन

कायाकल्प भी अच्छा चला है।

कहानी संग्रह भी कई भागों में प्रकाशित हुए। मानसरोवर प्रेम द्वादशी, प्रेम पंचमी आदि।

इसके अतिरिक्त आपने कुछ लेख भी लिखे हैं, जो कि एक खोज के रूप में हैं, जो एक सीमा तक विचारात्मक भी कहे जा सकते हैं। 'कहानी' नाम का लेख इस बात का प्रमाण है।

आप जब प्रारम्भ में हिन्दी क्षेत्र में आये तो आपने बड़ी भद्दी भूलें की। व्याकरण का ज्ञान भी आपको कम था। लिखते समय कुछ घबड़ा से जाते थे। विराम, अर्द्ध चिन्ह का भी ज्ञान नहीं रखते थे। थे। व्याकरण सम्बन्धी भूल का एक उदाहरण:—

"कस्बे के लड़के लड़कियाँ श्वेत थालियों में दीपक लिये मंदिर की ओर जा रहे थे।"

"हम लोगों से जो भूल-चूक हुई वह क्षमा किया जाय।" आदि। इसके अतिरिक्त आपने कुछ विचित्र शब्दों का भी प्रयोग किया। "फुरता, फुरती" "झैंक, नैत"।

इतना सब होते हुए भी आपने जो कुछ लिखा वह गजब का था। मुहावरेदार भाषा जब प्रवाह लेकर चलती, तो अजब समा दिखलाती थी।

प्रारम्भ में आपकी रचनायें कुछ शिथिल ही चली, पर बाद में प्रौढ़ता आने लगी।

प्रारम्भ की रचना की यह दो पंक्तियाँ:—

"......यह हमारी अंतिम चेष्टा होगी। यदि अबके हार हुई तो ओरछे का नाम सदैव के लिये डूब जायगा।"

धीरे धीरे आपका यह संकोच दूर होता गया भाषा में प्रौढ़ता आती गयी, प्रवाह क्रम से चलने लगा और शब्द चयन भी एक सीमा तक सुधर गया।

आपने जो कुछ लिखा वह सोचने का विषय है। आपका प्रत्येक उपन्यास ऊँच, नीच, अमीर, गरीब, छोटा बड़ा, आदि भावनाओं को लेकर चला। किसान और मजदूरों की कष्टरूपी कथायें, शहर और ग्राम की व्यवस्था, समाज सुधार इनकी विशेष पूँजी थी।

लेकिन यदि आप इतिवृत्तात्मकता को कुछ कम करके, आदर्शात्मिकता एवं भावात्मिकता की ओर कुछ झुक सकते, और अपने चरित्रों को साद्यांत एक-सा निभा सकते, तो परमोत्कृष्ट औपन्यासिक होने की पात्रता आपमें प्रस्तुत थी। देशप्रेम की ओर तो बढ़े, किन्तु जितना कुछ देशीय मान है, उसकी भी सम्यक रक्षा आपसे नहीं हो सकी है।

रंगभूमि उपन्यास में एक क्षत्रिय रईस तो योरेशियन बालिका के साथ अपना पुत्र विवाहने की स्वीकृति दे देता है, किन्तु जातीय अभिमान वश योरेशियन एक हिन्दू से अपनी लड़की नहीं विवाहता। यह चित्रण प्रतिकूल है।

हिन्दू मे जातीय अभिमान अधिक होता है, या योरेशियन में यह समझने की बात है।

इतना सब होते हुए भी हम आपको एक भारी उपन्यासकार मानते हैं। आपके बड़े बड़े ग्रन्थ उत्कृष्ट, किन्तु सदोष हैं, तथा बहुत सी छोटी कथायें बढ़िया और निर्दोष हैं। इनमें वर्णन की शक्ति अच्छी है। किन्तु कथाओं को देखते हुए प्रायः अनुचित विस्तार द्वारा ग्रंथ बढ़ गए हैं।

आपकी कहानियों में से कुछ उत्कृष्ट गद्यांश नीचे के स्थल में दिये जा रहे हैं।

"संसार एक रण-क्षेत्र है। इस मैदान में उसी सेनापति को विजय लाभ होता है, जो अवसर को पहचानता है। वह अवसर देखकर जितने उत्साह के साथ बढ़ता है, उतने ही उत्साह से आपत्ति के समय पर पीछे हट जाता है। वह वीर पुरुष राष्ट्र का निर्माता होता है, और इतिहास उसके नाम पर यश के फूलों की वर्षा करता है।"

"महादेव के अन्तः नेत्रों के सामने अब एक दूसरा ही जगत् था, चिन्ताओं और कल्पनाओं से परिपूर्ण। यद्यपि अभी कोष के हाथ से निकल जाने का भय था, पर अभिलाषाओं ने अपना काम शुरू कर दिया। एक पक्का मकान बन गया, सराफे की एक भारी दूकान खुल गई, निज सम्बन्धियों से फिर नाता जुड़ गया, विलास की सामग्रियाँ एकत्र हो गईं, तब तीर्थ यात्रा करने चले और वहाँ से लौटकर बड़े समारोह के साथ ब्रह्मभोज हुआ। इसके पश्चात् एक शिवालय और कुआँ बन गया, एक उद्यान भी आरोपित हो गया और वहाँ वह नित्य प्रति कथा-पुराण सुनने लगा, साधु-सन्तों का आदर सत्कार होने लगा।" कल्पना और स्वप्न का कितना जीता जागता चित्र है।

नशा नाम की कहानी में प्रेमचंद जी ने कुछ पंक्तियों में कहानी का आशय लिख दिया, जो कितना मार्मिक है:—

"क्या कसूर किया था बेचारे ने। गाड़ी में साँस लेने की जगह नहीं, खिड़की पर ज़रा साँस लेने खड़ा हो गया तो उस पर इतना क्रोध! अमीर होकर क्या आदमी अपनी इन्सानियत बिलकुल खो देता है!"

महातीर्थ में कैलासी:—

"इस घर से निकलकर आज कैलासी की वह दशा थी, जो थियेटर में एकाएक बिजली के लैम्पों के बुझ जाने से दर्शकों की होती है। उसके सामने वही सूरत नाच रही थी। कानों में वही प्यारी-प्यारी बातें गूँज रही थीं। उसे अपना घर काटे खाता था। उस काल कोठरी में उसका दम घुटा जाता था।"

कुछ लोगों के विचार में प्रेमचन्दजी की सर्वश्रेष्ठ कहानी "शतरंज के खिलाड़ी" है, इसकी तुलना विश्व की किसी भी उत्कृष्ट कहानी से की जा सकती है। आपकी वर्णन शैली इतनी प्रभावशालनी है कि उसको पढ़कर दृश्य आँखों के सामने सजीव हो उठते हैं।

"वाजिदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे-बड़े, अमीर गरीब सभी विलासता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, तो कोई अफीम की पीनक ही के मज़े लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग में, साहित्य क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कलाकौशल में, उद्योग-धंधों में, आहार-व्यवहार में सर्वत्र विलासता व्याप्त हो रही थी।............

संसार में क्या हो रहा था, इसकी किसी को ख़बर न थी। बटेर लड़ रहे हैं, तीतरों की लड़ाई के लिये पाली बदी जा रही है। कहीं चौसर बिछी हुई है, पौ बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रङ्क तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फ़क़ीरों को पैसे मिलते, तो वह रोटियाँ न लेकर अफीम खाते या मदक पीते...............।"

कितना सजीव चित्रण है, इस कहानी का।

और जब वाजिद अली शाह बंदी बनाकर ले जाये जाते हैं, उस समय के शब्द हृदय में कितना तूफान और सिहरन भर देते हैं।

"दोनों सज्जन फिर जो खेलने बैठे तो तीन बज गये। अबकी मिरज़ाजी की बाजी कमजोर थी। चार का गजर बज रहा था कि फौज की वापसी की आहट मिली। नवाब वाजिदअली शाह पकड़ लिये गये थे, और सेना उन्हें किसी अज्ञात स्थान को लिये जा रही थी। शहर में न कोई हलचल थी, न मार-काट। एक बूँद भी ख़ून नहीं गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शांति से, इस तरह खून बहे बिना, न हुई होगी। यह वह

अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते हैं, यह वह कायरपन था, जिस पर बड़े-से-बड़े कायर भी आँसू बहाते हैं। अवध के विशाल देश का नवाब बन्दी बना चला जाता था, और लखनउ ऐश की नींद में मस्त था। यह राजनैतिक अधःपतन की चरम सीमा थी।"

इसके अतिरिक्त प्रेमचंदजी ने जब निबंध और लेखों की रचना की तो उनकी शैली और भाषा पूर्णरूप से बदल गयी। उस समय आप पूर्ण रूप से एक गम्भीर विचारक बन गये। और जो कुछ भी आपने विचार कर लिखा वह साहित्य की कसौटी पर खरा उतरा।

कहानी के आवश्यक अंगों पर भी आपने अपने विचार प्रकट किये जो कि "कहानी" नाम के लेख में विद्यमान हैं।

इसी लेख में आपने अपना यह विचार प्रकट किया है:—

"मनुष्य ने जगत में जो कुछ सत्य और सुन्दर पाया है और पा रहा है, उसी को साहित्य कहते हैं, और कहानी भी साहित्य का एक अंग है।

मनुष्य-जाति के लिये मनुष्य ही सबसे विकट पहेली है। वह खुद अपनी समझ में नहीं आता। किसी न किसी रूप में वह अपनी ही आलोचना किया करता है,—अपने ही मनो-रहस्य खोला करता है। मानव-संस्कृति का विकास ही इसलिये हुआ है कि मनुष्य अपने को समझे। अध्यात्म और दर्शन की भाँति साहित्य भी इसी सत्य की खोज में लगा हुआ है, अन्तर इतना ही है कि वह इस उद्योग में रस का मिश्रण करके उसे आनन्दप्रद बना देता है, इसीलिए, अध्यात्म और दर्शन केवल ज्ञानियों के लिये हैं, साहित्य मनुष्य-मात्र के लिये।"

इसमें आपकी शैली सुदृढ़ और स्थिर है, इसके पूर्व हमें ऐसी बात नहीं मिलती।

इस प्रकार प्रेमचंद जी ने हिन्दी साहित्य को बहुत कुछ दिया

और जो दिया वह साहित्य की निधि है। इसी कारण तो आपके कुछ ग्रन्थों का अनुवाद विदेशी भाषाओं में भी हुआ और होता जा रहा है।

"राय कृष्णदास"

राय कृष्ण दास ने भी हिन्दी गद्य निर्माण में काफी सहयोग दिया। आपने कई ऐसे लेख लिखे जो विचारने योग्य है। आप की शैली और लेखकों से भिन्न है। भाषा भी आपकी सरल और शुद्ध है। आपने हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू के चलते फिरते साधारण शब्दों का भी अपनी भाषा में प्रयोग किया।

आप के लेख गम्भीर और मार्मिक होते हैं। आप की कहानियों में "कला और कृत्रिमता" बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त आपने सम्वाद में भी लेख "हीरा और कोयला" लिखा है जो ध्यान देने योग्य है।

आप यदि लिखते समय भावना में बह गये तो लिखते ही चले जायेंगे। वाक्य का छोटा होना भी आपकी सफलता का सहायक है। भाव प्रकाशन के समय वह गम्भीर रहने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा उनकी रचनाओं से प्रकट होता है। जैसे:—

"सुनो। केवल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तो इसके निर्माता का उद्देश्य हई नहीं। उसे तो एक वस्तु-निवास स्थान की रचना करना थी, किसी सम्राट की पद-मर्यादा के अनुरूप। अतएव ऐसे भवन के लिए जितने अलङ्करण की अपेक्षा थी, उसकी इस में तनिक भी कसर नहीं……। उससे एक रेखा भी अधिक नहीं; क्योंकि घर तो घर, चाहे कुटी हो वा राजमहल; उसका प्रधान उपयोग तो यही है कि उसमें जीवन बसेरा ले—पंछी अपना नीड़ भी तो इसी सिद्धान्त पर बनाता है। वह मृग मरीचिका की तड़क-भड़क वाला पिंजड़ा नहीं बनाता जो जीवन को बन्दी

करके ग्रास लेता है। तुम्हारे और उसके कौशल में भी कहीं अन्तर है। केवल बाहरी आकर्षण होना ही कला नहीं। उसका रूप प्रसंग के अनुकूल होना ही उसकी चारुता है।"

उपर्युक्त गद्यांश में उनकी शैली पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होती है जो नया रूप लिये हुए है। भाषा भी अनोखी है। 'कसर' "हुई" आदि शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं।

परिचय कराते समय आप की भाषा देखते ही बनती है:—

"नीहार भी उन्हीं में से था। संग तराशों की टोली का वह मुखिया था और उसके काम से उसके प्रधान सदैव संतुष्ट रहते थे। किन्तु वह अपने काम से संतुष्ट न था। उसमें कल्पना थी--जो नक्शे उसे पत्थरों में तराशने को दिये जाते उनमें हेर-फेर और घटाव-बढ़ाव की जो भी आवश्यकता सुरुचि को अभीष्ट होती, उसे तुरन्त भास जाती। परन्तु उसका कर्तव्य था केवल आज्ञा पालन, अतः यह आज्ञा पालन वह अपनी उमंग को कुचल-कुचल कर किया करता। पत्थर गढ़ते समय टांकी से उड़ा हुआ छींटा उसकी आँखों में उतना न कसकता जितना उन नक्शों की कुघरता।"

आप की कहानियाँ इस उधेड़बुन में चलती हैं कि उसका समझना सर्व साधारण के लिये कठिन हो जाता है। "आँखों की थाह" ऐसी ही है।

हीरा और कोयला के सम्वाद के समय कोयले का कहना।—"क्या कहना है, तू तो कंकण जैसा खान के बाहर आता है; वह तो हीरा-तराश तुम्हें यह कृत्रिम-रूप देता है। तेरा अपना प्रकाश कहाँ! तू तो समस्त वर्णों और प्रकाशों में शून्य है। तुझ में जैसी छाया और आभा पड़ी, वैसा ही बन गया-गंगागए, गंगादास, जमुना गए, जमुनादास। यदि तू कहीं अंधेरे में पड़ा रहे तो लोगों की ठोकरें......"

इस में रायकृष्ण दास की लेखन कला का वास्तविक ज्ञान हमें मिलता है। "वसंत पवन धीरे धीरे चल रहा था। अटकता हुआ चल

रहा था। पुरुषों की भीड़ में उसे मार्ग ही न मिलता था। एक एक भूल भुलैया में पड़ा हुआ था।" ऐसे वाक्यों का प्रयोग वास्तव में उनके गद्य में कलात्मक भावना ला पाया था। इसी कारण आप का गद्य हिन्दी संसार में कुछ महत्व रखता है।

"वियोगी हरि"

वियोगी हरि हिन्दी संसार में एक नई शैली लेकर अवतीर्ण हुए। उन्होंने दो भाषाओं का प्रयोग एक साथ किया। एक ओर उर्दू के शब्दों का प्रयोग, दूसरी ओर संस्कृत भाषा के शब्द। काव्य भावना का निरुपण भी इसमें दृष्टिगोचर होता है। जब आपने संस्कृत के शब्दों को लेकर लिखा तो वह अत्यधिक क्लिष्ठ हो गयी और जब उर्दू के शब्दों का प्रयोग किया तो उर्दू ही लिखते चले गये।

आपके कुछ गद्यांशों को देखकर ऐसा ज्ञात होता है मानो आप उसके लिखने के लिये शब्द ढूंढ़ कर लाये हों जैसे:—

"जब मैं अति विशद निर्जन अरण्य कलरव-कल-कलित सुललित झरनों का सुगति-विन्यास देखता हूँ, मंद स्त्रोतस्वती-सरित-तट तरु-शाखा-विहरित-कलकंठो-कोकिल-कुहुक ध्वान सुनता हूँ, प्रभात-ओस-कण-झलकित-हरित-तृणाच्छादित-प्रकृति-परिष्कृत-बहु-वनस्पति-सुगंधित-सुखद भूमि पर लेटता हूँ, तथा नाना-विहंग-पूर्ण-सुफलित-वृक्षावृत-गिर सुवर्ण-शृंग-शुभ्र-स्फटिकोपम-शिलासन पर बैठ कर प्रकृति-छटा-दर्शनोन्मत्त-अर्धोन्मीलित-साश्रु-नयन द्वारा अस्त प्राय तप्तकाचन-वर्ण-रवि-मंडल-भव-कमनीय-कांति की ओर निहारता हूँ, तब स्वाभाव-सुंदर लज्जावनत अप्रकट-सुमन सौरभ रसिक पवन आकर, श्रवण-पुट-द्वारा तेरा विरहोत्कंठित प्रिय संदेश सुना जाता है।"

कितनी साधारण सी बात को रूपक बांध कर घुमा फिरा कर

कहा गया है। देखता हूँ, सुनता हूँ, लेटता हूँ, निहारता हूँ, संदेश सुनता हूँ, इतने शब्दों के साथ प्रकृति की पूरी छटा हमारे सामने प्रदर्शित कर दी जाती है। शब्दों की क्लिष्टता देखकर आश्चर्य होता है। क्या इस बात की आशा की जा सकती है, कि इन शब्दों को साधारण पाठक समझ सकते हैं।

यदि इसी प्रकार इस शैली का प्रचार हिन्दी क्षेत्र में आ जाता तो यह सम्भव था कि थोड़े ही समय बाद हिन्दी की ऐसी अवस्था हो जाती कि उसके समझने वालों की संख्या नाम मात्र को रह जाती।

वियोगी जी ने लेख भी लिखे जो उच्चकोटि के हुए। आपका "आँख पर हिंदी कवि" इस बात का प्रमाण है। इसके अंदर की शैली और भाषा बहुत मज़ेदार है। परंतु आश्चर्य की बात यह है कि उसमें पूर्व की भाँति क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं। सीधी सादी भाषा है और उसके साथ साथ उर्दू के शब्दों का प्राधान्य।

"............स्वप्न में भी नहीं, पोथी-पत्रे उलटते-पुलटते पूरे काठ के उल्लू बन जाते हैं। बिना कहीं लिखी हुई बात मानते ही नहीं। आँख का क़द्र पठित मूर्ख क्या जाने ? और विद्यार्थी ! नाम न लीजिये, यदि ये रट्टू, टट्टू न होते तो खुदाई नूर को ख़राब करने वाले चश्मे इतनी कसरत से बाज़ार में न दिखाई देते। ये सब आँख के पारखी नहीं। इन लोगों के पास वह आँख नहीं, वह चितवन नहीं, जिसमें पानी हो, कुछ लोच हो।"

इसमें "क़द्र" "खुदाई नूर" "ख़राब" "कसरत" "दिखाई" आदि उर्दू के शब्द दृष्टिगोचर होते हैं। इसके अतिरिक्त "इशारा" "एहसान" "तरफ़" "क़ैद" आदि का भी निःसंकोच प्रयोग किया है।

जब वह लिखने की अपनी सीमा तक चले जाते हैं, तभी वास्तव में उनकी लेखनी से ऐसी वस्तु निकलती है जो हृदय पर गहरा प्रभाव डालती है। जैसे:—

"कैसा होगा वह वीणा पर हाथ रखने वाला, कैसी होगी उसकी गतिमाधुरी, कैसी होगी उसकी सरल-मंद मुसकान।"

"शीलदार और लाजभरी आँख लाख में एक की होत बेहयाई के ज़माने में कौन किसे समझाता है! जब डीलदार हों, तब शीलदार भी हों। बड़ो में ही लाज होती है।"

उनके एक लेख "साहित्य-माधुरी" के यह गद्यांश वास्तव में वियोगी जी की प्रतिभा का हमें ज्ञान कराते हैं।

"साहित्य माधुरी मर्माहत रसिक जन ही धीर 'समीरे यमुना-तीरे वसति बने बन माली, 'एवं आत्मा व परे द्रष्टव्य' श्रोतव्यों मंतव्यः के बीच का रस-रहस्य समझ सकते हैं। जो साहित्य-माधुरी में मतवाला है उसे कोई भी मतवाला अपने मत में नहीं मिला सकता······ वह धर्मों की साधना वाणी के मंदिर ही में कर लेता है।"

व्याकरण में दांत खटखट करने वाले या दर्शनों के पचड़े में पचने वाले भी जब इस माधुरी का आकंठ पान करते हैं, तब वे भी अपनी विभोर रसना का इस प्रकार से उपदेश करने लगते है।

"जीभ निबौरी क्यों लगै, बौरी चाख अँगूर"

इस प्रकार के अन्य कई विचार पूर्ण लेख आपने लिखे जो हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध हैं। आपने हिन्दी की सेवा की और उसमें नवीनता भी लाने का प्रयत्न किया। तभी तो आप एक वर्ग के निर्माता माने जाते है जो कि, 'वियोगीहरि वर्ग' के नाम से प्रसिद्ध है।

"चतुर सेन शास्त्री"

चतुर सेन शास्त्री हिन्दी साहित्य के अच्छे कहानीकार हैं। आपने जितनी भी कहानियाँ लिखीं वह सब की सब हिन्दी साहित्य में एक महत्त्व रखती हैं।

क्योंकि आपने जो कुछ भी लिखा वह हृदय से लिखा जो कि

वास्तव मे उच्चकोटि का बना। हृदय से निकले हुए भाव सत्य और कल्पना के सम्मिश्रण से काफी सजग हो उठे हैं।

भाषा आपकी व्यवहारिक रही है। शब्दों के चयन में भी आपने तत्परता दिखलाई। कुछ शब्दों का प्रयोग आपने बहुत किया है "जैसे" "वैसे" "धकेलना" जाये"। इसके अतिरिक्त आपने कुछ व्यर्थ शब्दों को भी जोड़ा है, है का प्रयोग एक वाक्य में कई बार आ जाता है, जिससे उसकी सुन्दरता बिगड़ती है।

आपका क्षेत्र अन्य लेखकों की भांति नहीं रहा जो केवल कल्पना तक उड़े, सत्य का जिनसे कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा। आपने इस जगत में होने वाले कृत्यों को देखा, उन पर विचार किया। संसार के साथ वह हँसे और रोये। व्यवहारिक बातों पर आपने ध्यान दिया।

इस कारण जो कुछ आपने लिखा वह सत्य है। लिखने की सारी सामग्री आपको संसार से ही मिली। यही कारण है आपकी रचनाओं में एक अनोखापन रहता है, एक कसक, पीड़ा और कभी कभी मिठास होती है, जो हृदय को बेध जाती है।

आपकी भाषा में अपूर्व बल है। इसी कारण हम इनको प्रायः अद्वितीय गल्पकार मानते हैं।

आपको भारत के पिछले गौरव का भी अभिमान है, ऐसा उनकी रचनाओं से हमें ज्ञात होता है। "हल्दी की घाटी में" इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

"......अब युद्ध का कोई क्रम न रह गया था। तेग़ा से तेग़ा लड़ रहे थे। दुधारें खड़क रही थीं। खून के फव्वारे बह निकले थे। घायलों और मरते हुओं का चीत्कार सुनकर कलेजा काँपता था। योधा लोग वीर दर्प से उन्मत्त होकर घायलों और अधमरों को अपने पैरों से रौंदते हुए आगे बढ़ रहे थे। प्रताप अप्रतिमतेज से देदीप्यमान थे और वे दुर्धर्ष शौर्य से मुग़ल सैन्य में घुसते जा रहे थे। सरदारों ने उनको रोकने के बहुत प्रयत्न किये; परन्तु उनका क्रोध निस्सीम था, वे बढ़ते ही चले

गये। सरदारों ने उनके अनुगमन की चेष्टा की परन्तु प्रताप उनसे दूर होते चले गये।"

जोश के समय की यह पक्तियाँ:—

"अन्नदाता! आज हमारी कराली तलवार बहुत दिनों की अभिलाषा को पूरी करेगी। आज हम अपनी स्वाधीनता के युद्ध में अपने जीवन को सुफल करेंगे, जीतकर या हारकर।"

शरीर में कितना ओज कर देती है।

धारा प्रवाह का भी अच्छा भास आपकी रचनाओं में मिलता है। नीचे लिखी हुई पंक्तियों में प्रवाह के साथ कितनी वेदना है, यह ध्यान देने योग्य है:—

"बड़ा सुख है, अब रात-दिन चाहे जब रो लेता हूँ। कोई सुननेवाला नहीं, देखनेवाला भी नहीं। सन्नाटे की रात मे नितांत दूर टिमटिमाते तारो के नीचे, स्तब्ध खड़े काले वृक्षों के नीचे घूम-घूमकर मैं रातभर रोता हूँ। यह मेरा अत्यंत सुखकर कार्य है। इसमें मेरा बड़ा मन लगता है। और इस पवित्र रुदन के लिये स्थान उपयुक्त भी है। निकट ही गीदड़ रो रहे हैं। कुत्ते भी कभी कभी रो पड़ते हैं। घुग्घू बीच बीच में रोने का प्रयत्न करता है। परन्तु मेरे रोने का स्वर तो कुछ और ही है, वह अंतस्तल की प्राचीन भित्ति को विदीर्ण करके एक नीरव लहर उत्पन्न करता हुआ नीरव लय में लीन हो जाता है।"

कितनी वेदना है इनमें, ऐसे स्थल चतुर सेन जी की रचनाओं में बहुत मिलते हैं।

आपकी लिखी हुई कहानियों में से "दुखवा मैं कासे कहूँ मेरी सजनी" सर्वश्रेष्ठ है। "हल्दी की घाटी में" के भी कुछ स्थल उत्कृष्ट हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शास्त्री जी की कहानियों ने हिन्दी साहित्य में एक नई दौर प्रारम्भ की, जिसके लिये वह धन्यवाद के पात्र हैं।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'का हिन्दी कार्य ध्यान देने योग्य है। आपने 'उग्र' शब्द को चरितार्थ कर दिखाया। जो कुछ आपने लिखा वह 'उग्र' साहित्य ही है।

आज तक विश्व में लुके छिपे जो अश्लील बातें होती हैं, उन पर किसी का ध्यान नहीं जाता, जो समाज के लिये कलंक की बात है, उन पर उग्र जी का ध्यान गया और उसपर आपने लिखना प्रारम्भ किया।

जब ऐसा साहित्य आपने विश्व के सम्मुख रक्खा तो चारों ओर खलबली मच गयी। हिन्दी साहित्य के कुछ महारथियों ने उसे अश्लील कहा और उसको निदनीय ठहराया। पर उग्र जी ने इसका समर्थन न किया और अपनी धुन में वे आगे बढ़ते गये।

उनके नीचे लिखे हुए शब्द जो उनके स्वयं है, उपर्युक्त बात की पुष्टि करते हैं।

"है कोई ऐसा माई का लाल जो हमारे समाज को नीचे से ऊपर तक सजग दृष्टि से देखकर, कलेजे पर हाथ रख कर, सत्य के तेज से मस्तक तानकर, इस पुस्तक के अकिंचन लेखक से यह कहने का दावा करे कि—'तुमने जो कुछ लिखा है ग़लत लिखा है। समाज में ऐसी घृणित, रोमाँचकारणी, काजल काली तस्वीरें नहीं हैं।' अगर कोई हो तो सोत्साह सामने आवे, मेरे कान उमेठे और छोटे मुँह पर थप्पड़ मारे, मेरे होश के होश ठिकाने करे। मैं उसके प्रहारों के चरणों के नीचे हृदय-पाँवड़े डालूँगा, मैं उसके अभिशापों को सिर माथे पर धारण करूँगा, सँभाल लूँगा। अपने पथ में कतर-ब्योंत करूँगा। सच कहता हूँ. विश्वास मानिये, सौगन्ध और गवाह की हाजत नहीं मुझे।"

इस प्रकार और भी कई लेखनों में आपने अपने साहित्य की पुष्टि और विरोधियों का खंडन किया। आपकी शैली प्राय: इसी ढंग पर चली है। भाषा भी आपकी साधारण किन्तु सतेज है। उर्दू के साधारण शब्दों का प्रयोग आपने निर्भयता पूर्वक किया है। आपकी रचनाओं में आंग्ल भाषा के शब्द भी मिलते हैं। "Stand up on the bench". Well done, my young payer'. 'Beg your pardon'. 'Try your utmost' आदि स्कूल में प्राय: बोले जाने वाले वाक्यो का प्रयोग आपने नि:संकोच किया है।

आप की सफलता का मुख्य कारण भाषा की उदारता है। आप भाषा के सम्बन्ध में काफी उदार रहे, इसी कारण आप की रचनाओं में जोश है।

इस जोश का कारण उत्तेजना भी हो सकता है। आपने जो कुछ भी है देखा उसको उत्तेजना के साथ प्रगट कर देना चाहा। इसी कारण आप कहीं कहीं सीमा से अधिक चले गये हैं। जैसे :—

"...... मत मलने दो किसी मतवाले को अपने गालों को, मत सटने दो अपनी कोमल छाती को किसी राक्षस के वज्र-हृदय से।" इतना सब होते हुए भी उग्र जी बड़े सबल तथा यथार्थ लेखक हैं। इनकी लेखन शैली बहुत ही उच्चकोटि की है, किन्तु अश्लील विषयों में ज्ञान वर्द्धन करते-करते कभी आप इतना दूर निकल जाते हैं कि समझ पड़ने लगता है कि आप को उसी वर्णन में मज़ा आता है। यदि ऐसे विषयों को छोड़ कर आप सद्विषयों पर श्रम करें, तो अच्छी ख्याति के योग्य हो जाँय।

आप की हाल ही की प्रकाशित दो कहानियों "न्यूज रोल" और "मामा मुरली धर मिसिर" बहुत ही अच्छी बन पड़ी हैं।

उग्र जी अपने क्षेत्र में यदि थोड़ा परिवर्तन कर नवीन दिशा की ओर मुड़े, तो इतना निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वे एक

विख्यात साहित्य कलाकार के रूप में प्रतिष्ठा पा सकते हैं, क्योंकि आपमें प्रतिभा है, कल्पना है और है लेखन शक्ति।

भगवती चरण वर्मा

भगवती चरण वर्मा ने भी हिन्दी साहित्य की कई रूप में सेवा की। आप एक साथ बहुत क्षेत्र में काम करते हैं। कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, इसके अतिरिक्त आप सिनेमा के संवाद और कहानियाँ भी लिखते हैं। आप एक सफल पत्रकार भी रह चुके हैं।

आपका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास "चित्रलेखा" है। उसके अन्दर की मनोभावनायें, विचार, कल्पना, दार्शनिक संवाद सब अद्वितीय हुए हैं। बीजगुप्त का चित्रण सर्वश्रेष्ठ है। तीन वर्ष भी अच्छा उपन्यास है, पर चित्रलेखा के सम्मुख इसका विशेष महत्व नहीं रह जाता है।

'टेढ़े मेढ़े रास्ते' एक बहुत बड़ा उपन्यास है, जो भिन्न भिन्न विचारधाराओं को लेकर चला है। वादविवाद की अधिकता हो जाने के कारण वह कहीं कहीं नीरस लगने लगता है।

कहानियों में 'इंस्टालमेंट' संग्रह बहुत प्रसिद्ध है।

आपकी कहानियाँ वर्तमान जीवन से संबन्धित रहती हैं।

मनुष्य की दुर्बलताओं, समाज के नियमों के विरुद्ध आपने आवाज उठाई और उसके विरुद्ध आपने लिखा भी।

नीचे के एक गद्यांश में पंडित परम सुख के भाव का कितना सुंदर चित्रण वर्माजी ने किया है यह देखने योग्य है:—

"पंडित परम सुख ने पन्ने के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उँगलियाँ चलाईं, मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुँधलापन आया। माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गम्भीर हो गया, हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्राह्म-मुहूर्त्त में बिल्ली की हत्या! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान! रामू की माँ, यह तो बड़ा बुरा हुआ।"

इसके अतिरिक्त वर्माजी ने कुछ निबंध भी लिखे जो "हमारी उलझन" के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपकी भाषा प्रौढ़, विचार पूर्ण और प्रभावशालनी होती है। संवाद लिखने में आप सिद्धहस्त हैं। आपके लिखे हुए संवाद शरीर में एक सिहरन पैदा कर देते हैं। आशा है कि आप चित्रलेखा की ही भांति और नये-नये ग्रन्थों का निर्माण करेंगे।

इला चंद्र जोशी

इला चंद्र जोशी ने इन थोड़े वर्षों में कुछ उपन्यास लिखे जो विचारने योग्य हैं। जोशी जी ने मानव जीवन की गुत्थियां को दार्शनिक ढंग से सुलझाने का प्रयत्न किया है।

उनके उपन्यासों में "प्रेत और छाया" और "सन्यासी" प्रसिद्ध हैं।

आज कल आप "संगम" साप्ताहिक के सम्पादक हैं। आपकी गद्य शैली एक विचित्रता लेकर चली है, जो एक सीमा तक मनोवैज्ञानिक कही जा सकती है।

आपके नवरचित उपन्यास परिणीता एक गद्यांशः—

"अभी तक उस विराट भवन की स्मृति मेरे मन में ताजी है जिसके विस्तृत आंगन में मेरा क्रीड़ा-प्रेमी शिशु-हृदय आनंद की किलकारियाँ मारा करता था। वहाँ मैं कभी कभी अपने समवयस्क बच्चों के साथ आंख-मिचौनी खेलता था, कभी बिना रंदा की हुई लकड़ी के "बैट" और भुट्टे की खुखड़ी के बाल से क्रिकेट और कबड्डी के खेल में अपने को तन्मय पाता था। पर उस आंगन का आकर्षण मेरे लिये केवल इसी लिये नहीं था कि वहाँ पर खेल के साथी जुट जाते थे (वे साथी जिनमें से बहुतों को मेरी अकृतज्ञ स्मृति भूल चुकी है), बल्कि इस कारण भी कि वहाँ प्रतिदिन ऐसे विचित्र प्राणियों के दर्शन होते थे, जिन्हें भूलना चाहने पर भी मैं आज तक नहीं भूल पाया हूँ।"

इसके अतरिक्त आपने कुछ लेख भी लिखे हैं, जो संगम में समय समय पर प्रकाशित होते रहते हैं।

आपकी कहानियों में "पचास हजार रुपया" अच्छी है। उसमें मानव की दुर्वलताओं का विशद वर्णन है।

आपके उपन्यासों के परिच्छेद बहुत छोटे होते हैं। सन्यासी उपन्यास में आपने कथा को बहुत बढ़ाने का प्रयत्न किया, यह एक दोष है। पन्ने बढ़ाने से उपन्यास अच्छा नहीं हो जाता। उसमें आप दो कथाओं को लेकर चले हैं, जब एक स्त्री पात्र छूट जाता है तो दूसरे का आश्रय लेते हैं, जब वह मर जाती है, तब फिर प्रथम की ओर दौड़ते हैं इस प्रकार की बातें उपन्यास को कभी कभी अरोचक बना देती हैं।

फिर भी आप का परिश्रम ध्यान देने योग्य है। और विश्वास है कि यदि इस प्रकार ये नित्य नूतन उपन्यासों की रचना औदार्य के साथ करते रहे, तो निस्संदेह इनका नाम हिन्दी साहित्य में अमर हो जायेगा।

"रामगोपाल शुक्ल"

युग ने करवट ली। एक नया युग नवचेतना लेकर आया। हिंदी साहित्य में भी एक नयी दौर प्रारम्भ हुई। विश्व के सम्मुख रोटी का प्रश्न था, मकान का प्रश्न था, भूख का प्रश्न था। पाश्चात्य देशों से उठती हुई नवीन भावना का प्रचार भारत में भी हुआ। प्रेम और रोमांस की भावना छोड़ कर हिन्दी साहित्य के लेखकों ने भी नवीन दिशा की ओर पग बढ़ाया। प्रगतिशील लेखकों का एक दल अपनी आवाज़ बुलन्द कर सामत शाही के विरोध में उठ खड़ा हुआ। इस दल का नेतृत्व "राहुल" ने किया और आज हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की रचनाओं की कमी नहीं। यशपाल, अंचल, राधाकृष्ण आदि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

इसी प्रकार की विचारधारा रखते हुए शुक्ल जी भी हिन्दी साहित्य में आये। १९४३ से आपने अपनी रचनायें विभिन्न पत्रिकाओं में प्रका-

शित करनी प्रारम्भ करवा दीं। उनमें एक जोश था, समाज के बंधनों के प्रति एक विरोध की भावना थी। रोटी, कपड़ा और मकान का प्रश्न आपकी रचनाओं में भी ज़ोर से था। आप के द्वारा लिखे गये एकांकी नाटक "मजबूर" "पैसा" "लेखकों का मर्ज" कहानियों में "स्वप्न" "करुणा" इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

आपकी रचनाओं की भाषा, शैली के बारे में कुछ कहना उचित न होगा क्योंकि वे अभी प्रथमावस्था में ही हैं। गरम खून और नवयुवक होने के कारण आप की रचनायें अधिकतर अप्रकाशित ही रह जाती हैं। फिर भी प्रतिभा का विकास आवश्यक है, इस लिये इनको अपने मार्ग में परिवर्तन करना चाहिये।

आपकी शैली और भाषा के कुछ रूप :—

"कोई हमें बताओ कि हमें क्यों निकाला गया ? हमारी स्थानें छुड़ाई गईं ? हमारी रोज़ी क्यों छीनी गई ?
मुझे जवाब दो—

क्या रोटी माँगना गुनाह है ?

क्या कपड़ा माँगना गद्दारी है ?

क्या जीने लायक वेतन माँगना पाप है ?

वह चीख उठा।"

"उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई है, बदन एक दम पीला, हल्दी जैसा, आँखें गढ़े में धँसी हुई, गाल पिचके हुए, ओठों पर पपड़ी जमी, चेहरा झुर्रियों से भरा और सर के बाल अस्त-व्यस्त रुखे-सूखे बिना रोक-टोक बढ़े हुए।"

"तुम कला को नहीं खरीद सकते। तुम जन संघर्षों को नहीं रोक सकते। तुम अपनी मौत की घड़ी नहीं टाल सकते।"

शुक्ल जी की मुख्यतः यही शैली और भाषा है। अन्त में उनके बारे में हमें इतना ही कहना है कि यदि वे अपनी साहित्यिक साधना में रत रहे और लेखन कला को ऊपर उठाते रहे तो वह हिन्दी साहित्य की

स्थायी सेवा कर सकेंगे और उस में कुछ नवीनता ला सकने में समथ होंगे।

हिन्दी साहित्य में बहुत से ऐसे लेखक भी उपस्थित हैं जो अभी प्रकाश में नहीं आ पाये हैं। रचनायें तो बड़े-बड़े विद्वानों तक की अप्रकाशित पड़ी हैं। हमें विश्वास है कि उन पुस्तकों के प्रकाश में आने पर हिन्दी साहित्य में कुछ नवीनता अवश्य आ जायेगी। धर्म सम्बन्धी पुस्तकों का प्रकाशन अभी तक नहीं हो पाया है। मनोविज्ञान से पूर्ण कुछ उपन्यासों का मुद्रण अभी तक रुका पड़ा है। इन में से एक पुस्तक "प्रेम का अन्त" भी है, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हो पायी है जिसके लेखक एक नवयुवक कलाकार श्यामशरण मिश्र हैं। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र सम्बन्धी पुस्तकों का मुद्रण अभी तक नहीं हो पाया है। ऐसी पुस्तकों की इस समय बड़ी ही आवश्यकता है। प्रकाशकों का कर्त्तव्य है कि वे खोजपूण, ऐतिहासिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक समस्याओं पर लिखी गयी पुस्तकों का मुद्रण शीघ्रता से करें, इससे हिन्दी की वास्तव में बहुत बड़ी सेवा हो सकेगी।

हिन्दी साहित्य में समाचार पत्र एवं पत्रिकायें

सबसे पहला हिन्दी पत्र जोकि राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' की सहायता से निकला वह 'बनारस-अख़बार' था। इस पत्र का प्रकाशन संवत् १९०२ से प्रारम्भ हुआ। इसकी भाषा खिचड़ी थी, इस कारण इसको पूर्णतया हिन्दी पत्र नहीं कहा जा सकता। इसका हिन्दी जगत में उचित आदर नहीं हुआ। इसके सम्पादक श्री गोविन्द रघुनाथ थत्ते थे।

इसके पश्चात् काशी से 'सुधाकर' पत्र निकला, पर इसका भी हिन्दी जगत में विशेष प्रचलन नहीं हुआ।

सबसे पहला हिन्दी में उच्चकोटि का पत्र 'कविवचन सुधा' था, जिसके सम्पादक श्री भारतेन्दु बाबू हरीश्चन्द्र थें। इसका प्रकाशन

१९२१ से प्रारम्भ हुआ। सुधा पत्र प्रारम्भ में मासिक था, उसके पश्चात् पाक्षिक हुआ, फिर साप्ताहिक। १९३७ से इसके सम्पादक पंडित चिन्तामणि हो गये। १९४२ के बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया।

१९२९ में कलकत्ते से "हिन्दी दीप्त प्रकाश" निकला जिसका श्रेय श्री बाबू कार्तिक प्रसाद को था। इसी वर्ष 'बिहार बन्धु' का जन्म हुआ।

१९३० में हरीशचन्द्र जी ने 'हरिश्चंद मैगजीन निकाली जो दूसरे वर्ष चलकर 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' के नाम में बदल गयी।

संवत् १९३४ में

भारत मित्र—पं० दुर्गाप्रसाद तथा अन्य महाशयों द्वारा निकाला गया
मित्र विलास—पंजाब प्रांत से निकाला गया।
हिन्दी प्रदीप और आर्य दर्पण—पं० बालकृष्ण भट्ट
नाम के प्रसिद्ध पत्रों ने जन्म लिया
संवत् १९३५ में कलकत्ता से
सार सुधानिध—संपादक पंडित सदानन्द जी थे।
उचित वक्ता—सामयिक साहित्य

नाम के पत्र निकाले गये।

संवत् १९३६ में उदयपुर से "सज्जनकीर्ति सुधाकर" निकला। जिसके निकालने का सम्पूर्ण श्रेय महाराणा सज्जन सिंह जू देव को है।

संवत् १९३९ में पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने कानपुर से 'ब्राह्मण' पत्र निकाला।

संवत् १९४० में प्रसिद्ध पत्र "हिन्दोस्तान" अंग्रेजी में, फिर हिन्दी में, तथा अंग्रेजी में फिर हिन्दी, अंग्रेजी तथा उर्दू में निकला। १ नवम्बर. १९४२ से यह पत्र दैनिक कर दिया गया।

सम्पादक—स्वामी राजारामपाल सिंह

सहकारी सम्पादकों में—

पंडित मदन मोहन मालवीय, बाबू बालमुकुन्द गुप्त तथा अमृतलाल चक्रवर्त्ती थे। राजाजी की मृत्यु के बाद यह पत्र विलीन हो गया। उसके बाद उनके उत्तराधिकारी रमेशसिंह जी ने "सम्राट" पत्र को साप्ताहिक निकाला और फिर दैनिक कर दिया। पर उनकी असमय मृत्यु से वह पत्र विलीन हो गया।

संवत् १९४० से 'भारत जीवन' बाबू रामकृष्ण वर्मा की ओर से निकला, जो साप्ताहिक था।

संवत् १९४२ में कानपुर से 'भारतोदय दैनिक' बाबू सीताराम की अध्यक्षता में निकला जो एक साल चल कर बन्द हो गया।

संवत् १९४४ व ४६ में

"आर्यावर्त्"

"राजस्थान"

पत्र आर्य समाज की ओर से निकले।

संवत् १९४५ में 'सुगृहणी' मासिक पत्रिका हेमंतकुमारी देवी की अध्यक्षता में निकली।

संवत् ४६ मे हरदेवी द्वारा 'भारत भागनी' निकाली गयी।

संवत् १९४७ में "हिन्दी वंगवासी' का जन्म हुआ।

इसके पश्चात् संवत् १९४८ में कुन्दनलाल ने 'कवि व चित्रकार' पत्र निकाला जो कुछ दिन चलकर बन्द हो गया।

बम्बई के

'श्री वेंकटेश्वर समाचार'

प्रयाग के

"अभ्युदय"

कानपुर के

"वर्त्तमान"

ने हिन्दी की महान् सेवा की और अब भी कर रहे हैं।

लखनऊ के बालमुकुन्द बाजपेयी ने "लक्ष्मण" नाम का पत्र निकाला जो आगे चलकर बन्द हो गया।

कलकत्ते से

स्वतंत्र

विश्वमित्र

मतवाला

हिन्दू पंच

श्रीकृष्ण संदेश

आदि अच्छे पत्र निकले।

आगरे से "आर्य मित्र" तथा दिल्ली से "हिन्दू संसार" तथा "अर्जुन" ने हिन्दी की महान सेवा की।

महात्मा गाँधी द्वारा चलाये हुए पत्र

"हिन्दी नवजीवन"

'हरिजन'

भी हिन्दी संसार में महत्व रखते हैं। लखनऊ से "विद्या विनोद" नाम का साप्ताहिक पत्र भी निकला।

"हिन्दी केसरी" "कर्म योगी" को गरम दल वालों ने निकाला। काशी का "आज" आज तक एक सुन्दर पत्र है।

"सरस्वती" पत्रिका बाबू श्याम सुन्दर दास, महावीर प्रसाद द्विवेदी, देवीप्रसाद शुक्ल, पदुमलाल बख्शी आदि कुशल विद्वानों के प्रयत्नों से खूब बढ़ी।

सरस्वती के देखते ही देखते, इसी प्रकार की न जाने कितनी पत्रिकायें निकलीं जिन में निम्न लिखित मुख्य हैं।

"कमला

लक्ष्मी

सुदर्शन

समालोचक
छत्तीसगढ़-मित्र
राघवेंद्र
मर्यादा
इंदु
यादवेंद्र" आदि निकलीं।

स्त्रीपयोगियों में
"भारतभगिनी
स्त्रीधर्म शिक्षक
आर्य महिला
गृह लक्ष्मी
और स्त्री दर्पण मुख्य हैं।

चाँद का भी मुख्य स्थान है।

कविता सम्बन्धी पत्रों में
'रसिक वाटिका
रसिक मित्र
काव्य सुधाकर
हिन्दी-कवि कीर्त्ति प्रचारक
व्यास पत्रिका
काव्य कौमदी
कवि" इत्यादि कई पत्र निकले। इसके अतरिक्त

"जासूस
व्यापारी
खेतीबारी
देहाती
निगमागम चंद्रिका

सद्धर्म प्रचारक
लक्ष्मी
सनातन धर्म पताका
अवध समाचार
अमृत
अबला हितकारक
आर्य प्रभा
आर्यमित्र
उपन्यास
उपन्यास बहार
कला कुशल

उपन्यास लहरी
कबीर पन्थी
साहित्य
भविष्य
आर्य
शंकर
महावीर
भ्रमर
भगीरथ
तरंगणी
कान्यकुब्ज
कान्यकुब्ज हितकारी
कान्यकुब्ज सुधारक
कुर्मी हितैषी
खत्री हितैषी

गढ़वाली

जीवनदयाधर्मामृत

जैनगजट

टाउनामा

जैनप्रदीप

दरोगादफ्तर

तंत्र प्रभाकर

हिंदी मनोरंजन

नागरी प्रचारक

दीन बंधु

पांचालपंडित

रस्तोगी

जागीडा समाचार

डांगी मित्र

विलासनी

बड़ा बाजार गजट

बाल प्रभाकर

वीरभारत

ब्रह्मण रसिक लहरी

पियूष प्रवाह

सारस्वत

खत्री सर्वस्व

भूमिहर ब्राह्मण पत्रिका

भारत वासी

मारवाड़ी

मिथलामिहिर

सरयूपारीण
पाटलि पुत्र
शिक्षा
नारद
बंग विहार
राजपूत
रसिक रहस्य
राजस्थान केसरी
आशा
ऊषा
सेवा
मालवमयूर
नवनीत सद्धर्म
सत्य सिंधु
सोलजा पत्रिका
साहित्य सरोज
कमला
शक्ति
स्वदेश बांधव

हितवार्ता
सुधा निधि
हिंदी प्रकाश
हिंदी साहित्य
हिंदी बांधव
शारदा
क्षत्रिय मित्र

वीर संदेश
विद्या
समन्वय
हिंदी प्रचारक } मद्रास
युगप्रवेश }
शुद्धि समाचार
ओसवाल गजट
कलवार केसरी
हयहय मित्र
रंगीला भूत

आदि सामयिक पत्र निकले। इसमें से अधिकांश बंद भी हो गये हैं। 'माधुरी''सुधा' 'साहित्य समालोचक' 'वीणा' 'त्याग भूमि' 'विशाल भारत' मुख्य हैं। "कल्याण" भारत में बहुत लोक प्रिय है और इसके एक लाख बीस हजार से ऊपर ही ऊपर ग्राहक हैं। यह पत्र हिन्दुत्व के विचारों का है।

आजकल प्रचलित पत्रिकाओं तथा पत्रों में से निम्नलिखित प्रसिद्ध हैं। (मासिक)

माधुरी—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
सुधा—गंगा फाइन आर्ट प्रेस, लखनऊ
हंस—काशी
सरस्वती—प्रयाग
आरोग्य विज्ञान—इंदौर
हल और बाल सखा—इंडियन प्रेस, प्रयाग
भक्ति—पंजाब
उद्योग धंधा—कलकत्ता
वीणा—इंदौर
कल्याण—गोरखपुर

सुकवि—कानपुर
ग्राम सुधारक—झाँसी
विद्यार्थी—हिंदी प्रेस, प्रयाग
कुमार—कालाकांकर
हिंदी प्रचारक—मद्रास हिन्दी प्रचार प्रेस
कान्यकुब्ज—लखनऊ
प्रेमा—जबलपुर
विशाल भारत—कलकत्ता
विश्वमित्र—कलकत्ता
गंगा—भागलपुर
सहेली—प्रयाग
आर्य महिला—काशी
चाँद—प्रयाग
वाणी—खरगोन
वैशाली—विहार
बालक—दरभंगा
विज्ञान—प्रयाग और "सरिता"

(साप्ताहिक)

स्वराज्य—खंडवा
कर्मवीर—खंडवा
विजय—कलकत्ता
वंगवासी—कलकत्ता }
विश्वमित्र—कलकत्ता } साप्ताहिक एवं दैनिक
लोकमान्य—कलकत्ता }
वेंकटेश्वर—बम्बई
प्रताप—कानपुर, सिद्धान्त, काशी
आर्यमित्र—आगरा, नवयुग, दिल्ली

हलधर—भागलपुर
फौज़ी समाचार—फौजी
(उर्दू साप्ताहिक)
भारत—प्रयाग
(दैनिक)
स्वाधीन भारत—बम्बई
प्रताप—कानपुर
वर्तमान—कानपुर
हिन्दी मिलाप—लाहौर
आज—काशी, सन्मार्ग, काशी
अर्जुन—देहली
आनन्द—लखनऊ } बन्द
अवध समाचार—लखनऊ
स्वतन्त्र भारत—लखनऊ
नवजीवन—लखनऊ
अधिकार—लखनऊ स्वदेश लखनऊ, अमृतपत्रिता इलाहाबाद

इन पत्रिकाओं में से न जाने कितनी पत्रिकायें बन्द हो गयी हैं और स्वतन्त्र भारत होने के बाद न जाने कितनी नई पत्रिकाओं को जन्म मिला। भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात इतनी पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं कि उनका अनुमान लगाना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, समाजवादी, साम्यवादी, कांग्रेसी एवं भिन्न-भिन्न दल अपनी पुष्टि के लिए नाना प्रकार की पत्रिकायें निकाले हुए हैं।

कहानी पत्रिकाओं में "माया" "मनोहर" "आंधी" "मधुकरी" आदि मुख्य हैं।

ऐसे समय में इस बात की आवश्यकता है कि हिन्दी को कुशल सम्पादक मिले और उसमें उच्चकोटि की सामग्री हो। तभी हिन्दी और उसके पत्र की उन्नति सम्भव है।

उपसंहार

हिन्दी का स्वरूप अब बहुत बढ़ गया है, इस कारण सब लेखकों का वर्णन, जिनके अन्दर प्रतिभा है, असम्भव सा है। इस कारण स्थानाभाव के कारण कुछ लेखक छूट गये हैं, उनके लिए हम हृदय से क्षमा चाहते हैं।

उत्तर नूतन परिपाटी से लेकर आज तक हिन्दी क्षेत्र में सब अंगों पर काम हुआ है, जो ध्यान देने योग्य है।

उत्तर नूतन परिपाटी के समय निबंधकारों में:—"चन्द्रमौलि शुक्ल" "रामचन्द्र शुक्ल" "गुलाब राय" थे।

समालोचना में:—रामचन्द्र शुक्ल, रामनरेश त्रिपाठी, रामकुमार वर्मा।

इतिहासकारों में:—"शिवसिंह सेंगर, चन्द्रमनोहर मिश्र, प्रतिपाल सिंह, रामदेव जी, लक्ष्मी नरायण सिंह, जनार्दन भट्ट तथा लौटूसिंह मुख्य हैं।

पुरातत्व के सम्बन्ध में:—डाक्टर काशीप्रसाद जैसवाल, विश्वेश्वर नाथ रेउ, लोचन प्रसाद पांडेय, लौटूसिंह।

जीवन चरित्रकार:—इन्द्रजी तथा रामचन्द्र टंडन।

व्याकरणकारों में:—रामलोचन शरण।

बालोपयोगी ग्रन्थों में:—रामजी लाल शरण।

आजकल के उत्कृष्ट लेखकों में:—

'निराला', रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', कृष्ण कांत मालवीय, गंगा प्रसाद मेहता, हृदयेश, रामकुमार वर्मा, कृष्णबिहारी मिश्र मुख्य हैं।

मुसलमानों में:—पीर मुहम्मद, क़मरुद्दीन, अब्बास हैं।

स्त्री लेखिकाओं में:—पार्वती देवी, सुशीला देवी, केसरकुमारी देवी, शिवकुमारी देवी, चंद्रावती लखन पाल, महादेवी वर्मा, इन्दुमती शर्मा, विद्यावती जी और कंचनलता सब्बरवाल।

समाज सुधार में:—अवधबिहारी अवस्थी, देवव्रत शास्त्री।

पत्र संपादकों में:—ईश्वरी प्रसाद शर्मा, माखन लाल चतुर्वेदी, दुलारे लाल भार्गव, हेमचंद्र जोशी, लक्ष्मी नरायण गर्दे, त्रिपाठी आदि मुख्य हैं।

शास्त्रकारों में:—धर्मेंद्र शास्त्री, प्रसिद्ध नारायण सिंह, अवधकिशोर वर्मा, चन्द्रशेखर शास्त्री।

नाटककारों में:—मधुबनी, हरद्वार प्रसाद, बलदेवप्रसाद मिश्र गोविंददास और लक्ष्मीनारायण।

आख्यायिका में:—जनार्दन झा। उपन्यास में:—यशपाल, जनेन्द्र कुमार।

सिनेमा में:—किशोर साहू जो स्वयं रचनायें लिखते भी हैं और साथ साथ उनका दिग्दर्शन भी करते हैं। उनकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक "वीर कुणाल" है, कहानी संग्रह में टेसू के फूल"।

गल्पकारो में:—जनार्दन झा, धन्यकुमार।

इतिहासकारो में:—ईश्वरी प्रसाद, सत्यकेतु विद्यालंकार। जयचंद विद्यालंकार, गंगाप्रसाद मेहता और रामप्रसाद त्रिपाठी।

कांग्रेस में:—द्वारिका प्रसाद मिश्र, सम्पूर्णानंद, तथा गोविंद सहाय जी मुख्य हैं।

इतिहासकारो में (साहित्य संबंधी) जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, रामकुमार वर्मा, धीरेन्द्र वर्मा, त्रिलोकी नारायण दीक्षित हैं। अर्थ संबंधी ग्रन्थों में दयाशंकर दुबे, शंकरसहाय, भगवानदास, श्रीधर मिश्र। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में बड़े वेग से काम हो रहा है, और आशा की जाती है कि यदि इसी प्रकार हिन्दी में काय होता रहा तो निस्संदेह वह एक दिन विश्व की प्रबल भाषाओं में से हो जायेगी।

क्षमा याचना

आरम्भ में ऐसा विचार था, कि पुस्तक के सारे प्रूफ मिश्र जी द्वारा देखे जायेंगे, पर कुछ परिस्थितियों के कारण ऐसा न हो सका इस कारण पुस्तकमें अशुद्धियाँ हो गयीं हैं। मैं अपने तथा लेखकों की ओर उन अशुद्धियों के लिए पाठकों से क्षमा चाहता हूँ और विश्वास दिलाता हूँ कि अगले संस्करण में इनको दूर कर दिया जायगा।

प्रकाशक

सहायक ग्रन्थों की सूची

प्रस्तुत पुस्तक के लिखते समय निम्न पुस्तकों को सहायता के रूप में लिया गया। इस कारण हम उनके हृदय से आभारी हैं, जिनकी ये पुस्तकें हैं।

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास (मिश्रबंधु)

२. मिश्र बन्धु विनोद (मिश्रबंधु)

३. हिंदी साहित्य का इतिहास (रामचंद्र शुक्ल)

४. हिंदी की गद्य शैली का विकास (जगन्नाथप्रसाद शर्मा)

समाप्त

राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर का आगामी आकर्षण

"हिन्दी साहित्य के आधुनिक गद्यकार"

इस पुस्तक में हिन्दी साहित्य के आधुनिक गद्यकारों का विस्तृत विवेचन होगा, जिसमें उनकी शैली और भाषा पर आलोचनात्मक पद्धति द्वारा विचार किया जायेगा। इसमें हिन्दी के आधुनिक प्रमुख गद्यकारों के साथ-साथ साधारण लेखकों पर भी विचार होगा। "हिन्दी की गद्य शैली का विकास" पुस्तक के अन्त में आये हुए दो लेखकों का वर्णन वहाँ पर उचित नहीं है, क्योंकि वे आधुनिक युग से सम्बन्ध रखते हैं और फिर उनका साहित्यिक क्षेत्र में उतना महत्व भी नहीं जितना कि अन्य छुटे हुए आधुनिक गद्यकारों का। इसलिये आधुनिक युग के गद्यकारों में उनका नाम पुनः आयेगा जोकि हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों के साथ होगा। उस पुस्तक में दोनों के नाम आ जाने के कारण मैं आलोचकों से क्षमा चाहता हूँ।

कुछ प्रमुख व्यक्तियों के नाम नीचे दिये जाते हैं जिनका विवरण इस पुस्तक में होगा।

१—राजाराधिकारमण सिंह २—राहुलसांकृत्यायन ३—रूपनारायण पांडे ४—धीरेन्द्र वर्मा ५—नन्ददुलारे वाजपेयी ६—रामकुमार वर्मा ७—भागीरथ मिश्र ८—महादेवी वर्मा ९—डा० नगेन्द्र १०—भगवती-चरण वर्मा ११—गुलाबराय १२—शांतिप्रिय द्विवेदी १३—यशपाल १४—अमृतराय १५—अमृतलाल नागर १६—उपेन्द्रनाथ अश्क

१७—पहाड़ी १८—रांगेय राघव १९—प्रो० अंचल २०—कामताप्रसाद गुरु २१—सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" २२—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी २३—सद्गुरु शरण अवस्थी २४—वृन्दावनलाल वर्मा २५—जैनेन्द्र कुमार २६—भगवती प्रसाद वाजपेयी २७—वात्स्यायन २८—रामवृक्ष बेनीपुरी २९—नेमिचंद जैन ३०—सेठ गोविन्ददास ३१—हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं अन्य लेखक जोकि हिन्दी साहित्य में कुछ ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। प्रकाशन की प्रतीक्षा कीजिये।

अध्यक्ष

राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर,

अमीनाबाद लखनऊ।